Chapter-6



# छठा अध्याय

# कला - शिल्प

प्राक्कथन :: पाँचवें अध्याय में काव्य कला के अध्ययन का स्वरूप स्पष्ट करते हुए, वस्तु कला या भाव कला का सैद्धान्तिक विवेचन कर निराला काव्य की उक्त दृष्टि से सोदाहरण व्याख्या की जा चुकी है। अतः प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत काव्य-कला के द्वितीय पक्ष अर्थात् रूप-कला या कला-शिल्प का सैद्धान्तिक विवेचन करते हुए निराला-काव्य की सोदाहरण व्याख्या की जा सकती है। पूर्व अध्ययन के समान ही यहाँ भी यह आवश्यक है कि काव्य-शिल्प की अथवा कला-शिल्प की सैद्धान्तिक व्याख्या के साथ साथ उसके अध्ययन के विविध स्तरों का भी परिचय प्राप्त कर लिया जाय। अतः प्रस्तुत अध्याय का अध्ययनक्रम निम्नलिखित माना जा सकता है :--

१- कला-शिल्प - स्वरूप और प्रक्रिया

२- कला-शिल्प के स्तर --

  २-१ पद-शिल्प

  २-२ वाक्य-शिल्प

  २-३ महावाक्य-शिल्प

३- निरालाजी के कला-शिल्प की सोदाहरण व्याख्या

४- उपसंहार

## १- कला-शिल्प - स्वरूप एवं प्रक्रिया ::

पूर्ववर्ती अध्ययन के अंतर्गत भाव का कला या सौन्दर्य में संक्रमित होता हुआ रूप देखा गया।प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा शिल्प का कला या सौन्दर्य में संक्रमित होता हुआ रूप देखा जा सकता है।संप्रति इसे ही कला-शिल्प कहा गया है।दूसरे शब्दों में पहले अध्ययन के अंतर्गत भाव प्रधान था,प्रस्तुत अध्ययन में विन्यास की प्रधानता है,अर्थात् वहां भाव या वस्तु के रूप का अध्ययन किया गया,यहां शिल्प या विन्यास के रूप का अध्ययन किया जायेगा।आशय यह कि पूर्ववर्ती अध्याय में जिस भाव सौन्दर्य का निरूपण किया गया है उसकी संयोजना अथवा विन्यास अथवा शिल्प किस रूप में प्रकट हुआ है,यही प्रस्तुत अध्याय का मूल विषय है।

अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने के लिए कवि को माध्यम या साधन के रूप में भाषा का आश्रय लेना पड़ता है,और उक्त माध्यम या साधन का समुचित विनियोग करने के लिए उसे विशिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण करना पड़ता है।अतः माध्यम के रूप में भाषा तथा प्रक्रिया के रूप में विशिष्ट भाषा विन्यास के सम्यक योग द्वारा ही काव्य का कला-शिल्प निष्पन्न होता है।

आशय यह कि काव्य भाषा की कला है,[१] क्योंकि कवि भाव या विचार द्वारा नहीं बल्कि शब्द द्वारा काव्य का रूप-निर्माण करता है।[२] अतः काव्य मूलतः भाषा पर आधारित कला है।[३] निरालाजी के विचार भी उक्त दृष्टिकोण के समान्तर देखे जा सकते हैं।भावों की उच्चता या भावों का अच्छा प्रकाशन या चमकते हुए चित्र,उनके अनुसार काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है।[४] परन्तु भावों का

१- Valery Poet - The Art of Poetry - P. 59,64

२- Ibid. P. 63

3- Ibid. - P. 226,270,275

४- निराला,प्रबंध-पद्म,पृष्ठ २६,२८

प्रकाश या उनकी चमक शब्दों द्वारा ही संभव है,क्योंकि शब्द स्वयं प्रकाशवान है।[1] अत: उन्होंने कविता की कारीगरी या कला-शिल्प का क्रम-निर्धारण इस प्रकार किया है - अक्षर,शब्द,भावों के चित्र।[2] इस प्रकार निरालाजी ने पश्चिम के प्रतीकवादी कवियों के समान वर्ण-विचार द्वारा काव्य-कला का रूप-निर्णय करते हुए,[3] भाव-सौन्दर्य के साथ शब्द-सौन्दर्य को महत्व प्रदान किया है।[4]

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि काव्य निर्माण के अंतर्गत कला-शिल्प की प्रक्रिया मूलत: शब्द या पद,वाक्य,तथा वाक्य समूह पर आधारित होती है।पारिभाषिक शब्दावली में इसे पद-शिल्प,वाक्य-शिल्प,एवं महा वाक्य-शिल्प कहा जा सकता है।प्रस्तुत शब्दावली परम्परागत शब्दावली से भिन्न है,अत: उनकी यथास्थान व्याख्या करते हुए निराला-काव्य के कला-शिल्प का सोदाहरण मूल्यांकन किया जायेगा।

## २- कला-शिल्प के स्तर ::

२-१ पद-शिल्प : 'पद',शब्द का पर्यायवाची माना जाता है,और शब्द मूलत: | ?

---

१- निराला,प्रबंध-प्रतिमा - पृष्ठ - २३७

२- निराला - प्रबंध-पद्म - पृष्ठ ७१ ; चाबुक - पृष्ठ

३- निराला - प्रबंध-प्रतिमा - पृष्ठ २०२

४- निराला - प्रबंध-पद्म - पृष्ठ ७४

ध्वनि पर आधारित है, अतः एक से अधिक ध्वनियों के समूह को शब्द कहा जा सकता है। इनध्वन्यात्मक शब्दों का विशिष्ट विन्यास छन्द में किया जाता है, और छन्द का आधार वर्ण, मात्रा, लय, आदि पर रहता है, अतः इनका अध्ययन आवश्यक है, जो निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

वस्तुतः काव्य के माध्यम या साधन[1] के रूप में भाषा का विचार करते हुए ध्वनियों[2] के कार्य तथा ध्वनि-सम्वेदना का विचार प्रमुख रूप[3] से किया जाता है। क्योंकि मूलतः काव्य ध्वनियों का अर्थ सम्पन्न समूह है। अर्थात् ध्वनि और अर्थ काव्य के दो अभिन्न तत्व है, परन्तु ध्वनि सौन्दर्य अंततः अर्थ की सुसंवादिता (*Harmony*) पर निर्भर है। आशय यह कि काव्य सौन्दर्य के निर्माण में ध्वनि और अर्थ दोनो परस्पर उपकारक हैं। पांचवें अध्याय में अर्थ या भाव सौन्दर्य का अध्ययन किया जा चुका है, अतः प्रस्तुत विवेचन में ध्वनि-सौन्दर्य का अध्ययन एवं विवेचन किया जा रहा है।

<u>२-१-१ ध्वनि-गुण</u> : विशिष्ट ध्वनियों के परिपार्श्व में सामान्य ध्वनियां कलात्मक स्वरूप प्राप्त कर लेती हैं। विशिष्ट ध्वनियुक्त शब्दों की आयोजना विशेष प्रसंग में नवीन अर्थ सम्पदा अर्जित कर लेती है, जिसे भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य-गुण कहा गया है। अर्थ निरपेक्ष ध्वनि गुणों का काव्य में सज्जात्मक मूल्य ही होता है। परन्तु जब वे अर्थ के विशेष रूप की सृष्टि में सहायक होते हैं, तभी उनका प्रतीकात्मक मूल्य बढ़ता है और उन्हें श्रेष्ठ काव्य का प्रमाण माना जाता है। अतः काव्य सौन्दर्य के उद्घाटन के लिए ध्वनि-गुणों का अध्ययन सहायक हो सकता है।[4]

---

१- Valery Paul - The Art of Poetry - P. 77

२- उद्धृ: Wellek & Warren - Theory of Literature - P. 145

३- Ibid - P. 159

४- Ibid. P. 161

प्रमुख रूप से ध्वनि-गुण के दो प्रकार माने जा सकते हैं--[1]

१- ध्वनि मे अंतर्निहित ( Inherent ) :- वे गुण जो प्रकृत्या ध्वनि में निहित रहते हैं,यथा- ओजस्विता,ऋजुता,मधुरता,कटुता, मृदुता इत्यादि।

२- सापेक्ष ( relational ) :- वे गुण जो लय,छन्द,आरोह-अवरोह, स्वरमान ( Pitch ),सातत्य (Duration of sounds),बलाघात, आवर्तन गति ( Frequency of recurrence Sounds ),आदि पर निर्भर रहते हैं।उदाहरणार्थ ध्वनि-आरोहित-अवरोहित,ध्वनि-सातत्य- कम या अधिक,बलाघात- सबल -निर्बल,आवर्तन गति- कम या अधिक आदि।

उक्त तत्व,क्योंकि अन्य शब्दों के सान्निध्य,उनकी योजना,परिमिति ( Measurement)आदि से संबंधित हैं,अतः वस्तुतः ध्वनि-गुण विन्यास में उक्त तत्वों का अंतर्भाव हो जाता है।

२-१-२ ध्वनि-गुण-विन्यास :इस तत्व के अंतर्गत अर्थ की स्पष्टता एवं प्रभविष्णुता के हेतु किसी वस्तु या आशय के साथउक्त गुणों का संयोजन दृष्टिगत होता है।उदाहरणर्थ रौद्र या भयानक स्थिति या रूप का वर्णन करने में `ट` वर्ग के ध्वनि-गुणों का संयोजन किया जाता है।अथवा कोमल या आह्लादक स्थिति या रूप के लिए - ल,श,स,ध्वनियों का प्रयोग होता है।रौद्र रूप के वर्णन के हेतु `ट` वर्ग की ध्वनियों की आवृत्ति की जाती है,या तीव्र भावों की अभिव्यक्ति के लिए ध्वनि-आरोह का प्रयोग किया जाता है,इत्यादि।

---

१- Wellek & Warren - Theory of Literature - P. 160

काव्य के अंतर्गत ध्वनि तथा ध्वनि सौन्दर्य के महत्व पर निरालाजी ने भी विचार किया है।दार्शनिक दृष्टि से विचार करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि शब्द का मूल-कारण ध्वनिमय ओंकार है।[1]

ध्वनि-गुण की दृष्टि से निरालाजी ने वर्ण-विचार[2] द्वारा काव्य के रूप-सौन्दर्य या कला-शिल्प की ओर ध्यान दिया है।श्री सुमित्रानन्दन पंत के काव्य का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए निरालकजी ने पंतजी[3] के ध्वनि-गुण-विन्यास का मुख्य आधार श,ण,व,ल,प्रमाणित किया है,तथा[4] इस आधार पर पंतजी के स्कूल को हिन्दी का श-ण-व-ल,स्कूल माना है।परन्तु उक्त ध्वनि-गुण-विन्यास को वे हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल नहीं मानते।उनके अनुसार ब्रजभाषा और खड़ी बोली की प्रकृति[5] के अनुकूल ध्वनि-गुण-विन्यास का मुख्य आधार स-म-ब-ल,हो सकता है,जिसका सफल प्रयोग उन्होंने अपने कला-शिल्प के अंतर्गत किया है।

काव्य में,ध्वनि-गुण-विन्यास के अंतर्गत ध्वनि-साम्य अथवा तुक का भी विशेष महत्व होता है।निश्चित क्रम से,छन्द के चरणान्त में,स्वर-व्यंजनमूलक[6] ध्वनि समूह के साम्य-संयोग को तुक अथवा ध्वनि-साम्य कहा जाता है।उक्त ध्वनि साम्य की निम्नलिखित विशेषताएं उल्लेखनीय है --

आवृत्ति की दृष्टि से :

१- कंठ्य,तालव्य,मूर्धन्य,दन्त्य,तथा ओष्ठ्य ध्वनि स्थानों में से ~~सर्क~~ किसी भी स्थान की ध्वनियों की क्रमयुक्त आवृत्ति।

~~--२--एक-से-अधिक-वर्णों~~----------------------------------------

१- निराला - गीतिका - भूमिका - पृष्ठ ७ ; २- प्रबंध-प्रतिमा - पृष्ठ २०४

३- निराला - प्रबंध-प्रतिमा - पृष्ठ २०२; ४- वही,पृष्ठ २०३

५- वही - पृष्ठ २०२ से २०४ ; ६- शुक्ल,पुत्तूलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना - पृष्ठ २१८

२- एक से अधिक वर्णों की आवृत्ति।[1]

३- एक से अधिक शब्दों की आवृत्ति।[2]

४- वाक्यांश की आवृत्ति।[3]

क्रम-योजना की दृष्टि से :-

१- छन्द के चारों चरणों के अन्त में ध्वनि-साम्य- अ-ब- क-ड।

२- प्रथम और द्वितीय,तथा तीसरे और चौथे चरण के अन्त में ध्वनि-साम्य- अ-ब,क-ड।

३- पहले,तीसरे और दूसरे,चौथे के अन्त में- अ-क,ब-ड।

४- पहले,चौथे,और दूसर,तीसरे के अन्त में- अ-ड,ब-क।

इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की क्रम योजना भी सम्भव है।[4]

~~लय-तत्व-वि~~ लय का विचार सामान्यत: संगीत के संदर्भ में किया जाता रहा है।परन्तु पश्चिम के विद्वानों एवं आलोचकों ने काव्य के संदर्भ में भी लय-तत्व का महत्व निर्दिशित किया है।इनमें कवि-आलोचक एज़रापाउण्ड का नाम उल्लेखनीय है।उसके अनुसार संगीत और काव्य दोनों का आधारभूत तत्व 'लय' है।[5]

लय की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए पाउण्ड ने बताया है कि संगीत में स्वर-मान (Pitch ) और माधुर्य (Melody ) लय पर आधारित होते हैं।श्रवणेन्द्रिय से टकराने वाली ध्वनि के स्पन्दनों (Vibrations ) की आवर्तनगति (Frequency )पर स्वरमान का आधार रहता है।आवर्तन गति के वैविध्य (Variations ) के आधार पर स्वरमान में भी वैविध्य आता है,और स्वर मान के इसी वैविध्य द्वारा माधुर्य उत्पन्न होता है।उक्त सिद्धान्त के अनुसार

---

१- शुक्ल,पुत्तुलाल- आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना - पृ०

२- (तु०) वही- पृ ; ३- (तु०) वही - पृ २१८ ; ४- वही - पृ

५-

काव्य में स्वर या व्यंजन की ध्वनि का स्वरमान उसके स्पन्दनों की आवर्तन गति पर आधारित रहता है। इस आवर्तन गति में वैविध्य लाने से तीव्र या धीमी ध्वनि उत्पन्न होती है।[1] इस प्रकार पाउण्ड ध्वनियों के सातत्य की दृष्टि से लय की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित स्पष्टीकरण देता है --

"प्रत्येक ध्वनि के सातत्य और बलाघात की, क्रमप्राप्त अन्य ध्वनियों से अनुकूलता और सुसंवादिता पर ही शब्द माधुर्य प्रधानतया निर्भर रहता है।"[2]

उक्त विवेचन को दृष्टि में रखकर यह कहा जा सकता है कि भाव भी लयाकृत होते हैं, अतः लयबद्ध रूप में ही उनकी उचित अभिव्यक्ति हो सकती है। अतएव यदि कवि भावों की लय को काव्य की लय में आबद्ध करने में सफल हो जाय तो वह सहृदय में रसोद्रेक कर सकेगा।[3] पाउण्ड ने इसीलिए लय की महनीयता के आधार पर काव्य की महनीयता स्वीकार की है क्योंकि उसमें भाव या विचार की लय और अभिव्यक्ति की लय दोनों का समुचित संयोग या समन्वय रहता है।[4]

उक्त मान्यताओं के आधार पर पाउण्ड ने यह धारणा व्यक्त की, कि यदि प्रत्येक भाव के उपयुक्त लय हो तो कवि छन्दशास्त्र के परम्परागत नियमों से सदा के लिए नहीं बांधा जा सकता, और भावों के वैविध्य के अनुसार छन्दों के रूपाकारों में भी वैविध्य उत्पन्न हो सकता है।[5] परन्तु साथ ही उसने यह भी स्वीकार किया कि जिस प्रकार संगीतकार समय को लय रूप में तभी विभक्त कर सकता है जब उसका संगीत के मूलभूत तत्वोंपर पूरा अधिकार हो, उसी प्रकार

---

१- Coffman Stanley K. Jr - Imagism - P. 133

२- Pound Ezra - 'The Approach to Paris'. "The New Age". Vol. XIII, No: 25 (October 16, 1913), P. 350

३- उद्धृ: Coffman Stanley K. Jr — Imagism - P. 134

४- Pound Ezra - 'The Sovereign Rhythms - "The New Age", Vol. VII, No: 21

५- Coffman Stanley K. Jr - Imagism - P. 135

कवि के लिए भी समय को इस दृष्टि से विभक्त करने अर्थात् लय-वैविध्य निर्माण करने के लिए छन्दशास्त्र पर संपूर्ण अधिकार होना आवश्यक है।[1]

उक्त दृष्टि के आधार पर, पाउण्ड के द्वारा किये गये मुक्त छन्द ( *Verse-Libre* ) संबंधी विधानों से यह गलतफहमी फैल गई कि छन्द से संपूर्ण मुक्ति ही मुक्त-छन्द है।[2] वस्तुत: पाउण्ड का आशय छन्द से इस प्रकार मुक्ति न होकर समय की इकाई (लय) के भीतर रहकर[3] अथवा एक सामान्य सांचे के भीतर रहकर ही वैविध्य उत्पन्न करना था।

निरालाजी ने भी पाउण्ड की तरह स्वर के उत्थान तथा पतन पर अपना लक्ष्य केन्द्रित करते हुए उसमें विशिष्ट लय उत्पन्न के अपने कला शिल्प का परिचय दिया है। लय के लिए उन्होंने 'प्रवाह' शब्द का प्रयोग किया है। अत: कला-शिल्प के अंतर्गत निरालाजी ने मुक्ति-छन्द के प्रणयन द्वारा जो क्रान्ति की उसे लय के संदर्भ में निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है।

प्राचीन वैदिक साहित्य के सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन द्वारा निरालाजी ने इस तथ्य का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया है कि उक्त साहित्य में स्वर के साथ शब्द, भाव तथा छन्द तीनों मुक्त हैं।[4] यह मुक्त अनुभूति और अभिव्यक्ति ही उनके लिए महान प्रेरणा सिद्ध हुई। अत: परम्परागत, रूढ़िबद्ध, तथा विकासावरोधक छन्दोविधान के विपरीत मुक्त अभिव्यक्ति के हेतु मुक्त काव्य या स्वच्छंद-छन्द या मुक्त छन्द का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने दार्शनिक दृष्टि द्वारा यह धारणा व्यक्त की कि मनुष्यों के समान कविता की भी मुक्ति होती है।

---

१- Coffman Stanley K. Jr - Imagism - P. 135-136

२- Ibid - P. 135

३- Ibid - P. 135

४- (अ) निराला - परिमल -भूमिका -पृ १३-१४, (आ) गीतिका- भूमिका - पृ ७

मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाने में है,और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाने में।[1] परिणामस्वरूप,पाउण्ड के समान निरालाजी के मुक्त छन्द के स्वरूप को लेकर हिन्दी जगत में भारी भ्रम फैला।आलोचकों ने मुक्त छन्द की खिल्ली उड़ाने के लिए उसे 'रबड़-छन्द' या 'केंचुआ-छन्द' नाम दिये।परन्तु निरालाजी ने विरोध के प्रत्युत्तर में अत्यन्त स्पष्ट तथा शास्त्रीय ढंग से मुक्त छन्द के स्वरूप की व्याख्या प्रस्तुत की।

निरालाजी के अनुसार अतुकान्त कविता मुक्त काव्य या स्वच्छन्द छन्द नहीं कही जा सकती,क्योंकि वह किसी सीमा या प्रधान नियम में बंधी रहती है।[2]इसके विपरीत मुक्त छन्द किसी भी नियम से दृढ़तापूर्वक बंधा नहीं होता। उसकी विशिष्टता ही यह है कि वह छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त रहता है।[3]वस्तुत: मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है,वही उसे छन्द सिद्ध करता है,और उसका नियम-राहित्य ही उसकी मुक्ति है।[4]

निरालाजी के अनुसार मुक्त छन्द का प्रवाह कवित्त छन्द के प्रवाह जैसा होता है।[5]अत: निरालाजी ने कवित्त छन्द की ही बुनियाद पर,उसी के भीतर मात्राओं के विविध प्रयोग करते हुए मुक्त छन्द का आविष्कार किया।[6]अत: उनका यह प्रयोग अनुचित न हो कर संपूर्ण रूप से सर्व स्वीकृत,प्रतिष्ठा-प्राप्त,शास्त्रीय छन्द के अनुरूप ही है।

---

१- निराला - परिमल - भूमिका - पृ १२

२- वही - पृ १६

३- वही - पृ १६

४- वही - पृ १६

५- वही - पृ १६

६- वही - पृ २०

निरालाजी के अनुसार इस कवित्त छन्द की बुनियाद पर निर्मित स्वच्छंद छन्द का रंगमंच की दृष्टि से भी विशेष महत्व है।इस छन्द में `आर्ट आफ म्यूज़िक` नहीं परन्तु `आर्ट आफ रिडिंग` का आनन्द मिलता है,क्योंकि यह छन्द स्वर-प्रधान नहीं,अपितु व्यंजन-प्रधान है।[1]

परन्तु निरालाजी ने संगीत का आधार लेकर भी मुक्त काव्य की रचना की है।उन्होंने पढ़ने और गाने दोनों के मुक्त रूप का निर्माण किया है।पहला वर्ण-वृत्त में,दूसरा मात्रा-वृत्त में।[2]उनके अनुसार इनसे हटकर मुक्त रूप में छन्द जा नहीं सकता।अत: स्वर एवं व्यंजन के आधार पर निरालाजी ने क्रमश: मात्रा-वृत्त वाली तथा वर्ण-वृत्त वाली मुक्त रचनाएं कीं,जिनमें प्रथम को उन्होंने `मुक्त गीत` कहा है,ये गायें जा सकती हैं परन्तु इनका संगीत अंग्रेजी ढंग का है।[3] `बादल राग`इस कोटि के अंतर्गत आने वाली रचना है।दूसरे प्रकार की रचना को उन्होंने `मुक्त छन्द` कहा है।इससे पढ़ने की कला व्यक्त होती है।[4] `जुही की कली`इस कोटि के अंतर्गत आती है।

आशय यह कि निरालाजी ने काव्य-सृजन करते समय भाव-सौन्दर्य के साथ रूप-सौन्दर्य या कला-शिल्प का मेल बैठाने का स्वाभाविक प्रयास किया है।इसी लिए उनके द्वारा मुक्त छन्द लिखा जा सका,[5]अन्यथा कृत्रिम रूप में वे मुक्त भावों की मुक्त अभिव्यक्ति कभी न कर पाते।मुक्त छन्द में उन्होंने विषम-गति द्वारा लय का वह प्रवाह उत्पन्न करने का प्रयास किया जिसे पाउण्ड ने मुक्त छन्द का अभिन्न तत्व माना है।अत: निरालाजी के अनुसार मुक्त छन्द भी अपनी

---

१- निराला - प्रबंध-पद्म - पृ १०१,(तु०) परिमल - भूमिका - पृ २१

२- निराला - प्रबंध-प्रतिमा - पृ २००

३- वही - पृ २२१

४- वही - पृ २२१

५- (तु०) वही - पृ २०४

विषम-गति में एक ही साम्य का अपार सौन्दर्य देता है, जैसे एक ही अनंत महासमुद्र के हृदय की सब छोटी बड़ी तरंगे हों, दूर प्रसरित दृष्टि में एकाकार एक ही गति में उठती और गिरती हुई[1] इसीलिए निरालाजी ने उन लोगों से जो मुक्त छन्द के लय-तत्व को नहीं समझ पाये, स्पष्ट रूप से कहा है- "जो लोग उसके प्रवाह में अपनी आत्मा को निमज्जित नहीं कर सकते, उसकी विषमता की छोटी बड़ी तरंगों को देखकर ही डर जाते है, हृदय खोलकर उसेसेअपने प्राणों को मिला नहीं सकते, मेरे विचार से यह उन्हीं के हृदय की दुर्बलता है।"[2]

आशय यह कि निराला एवं पाउण्ड ने लय की विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत करते हुए मुक्त छन्द के रूप को स्पष्ट करने का यत्न किया है। निराला के समान पाउण्ड ने अपने विचारों के समर्थन में प्राचीन ग्रीक साहित्स से उदाहरण दिये है,[3] और इस प्रकार पाउण्ड और निराला दोनों ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि मुक्त छन्द क्रमशः ग्रीक और वैदिक परम्परा से भिन्न नहीं है, बल्कि उन्हीं का क्रमशः अंग्रेजी और हिन्दीमें नवोन्मेष है। ✓

आशय यह कि काव्य मूलतः ध्वनि और लय पर आधारित होता है। साथ ही यद्यपि मुक्त छन्द में एक समान छन्दोविधान चाहे न भी हो, परन्तु व्यापक दृष्टि से[4] उसमें निश्चित रूप में लय का विशिष्ट एवं केन्द्रीय स्थान अवश्य होता है।

२-२ **वाक्य-शिल्प** : वह शब्द समूह जो अर्थोत्पादक अनुक्रम में संयोजित हो, उसे

---

१- निराला - परिमल - भूमिका - पृ १६

२- निराला - प्रबंध-पद्म - पृ १०२- १०३

३- Coffman Stanley K. Jr.- Imagism - P.94

४- उद्: Skelton Robin - The Poetic Pattern - 1956 - P.22

वाक्य कहा जा सकता है।वस्तुत: वाक्य ही काव्य की इकाई (Unit ) या मूल परिमाण माना जाता है जिसके द्वारा अनुभूति या आशय की एक विशिष्ट आकृति या विशिष्ट रचना का बोध होता है।इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि शब्दों के अर्थों से व्यंजित अनुभूतियों को विशिष्ट रूप देकर बनाया हुआ कलात्मक शब्दगुच्छ ही वाक्य है।[१] अत: वाक्य-शिल्प का अध्ययन निम्नलिखित दृष्टियों से किया जा सकता है,अथवा उसके निम्नलिखित स्तर माने जा सकते हैं--

२-२-१ पद-विधान : कवि,अनुभूति तथा विषय के अनुकूल शब्दों का चयन करता है तथा अभिव्यक्ति की मार्मिकता के अनुकूल विशिष्ट शब्द-नियोजन या पद-विन्यास का परिचय देता है।इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि किसी[२] साहित्य के रीति-निरूपण में शब्दावली का विशेष महत्व होता है,और शब्दावली का अध्ययन मुख्यतया उसके स्रोत और प्रयोग के आधार पर किया जा सकता है।

शब्दों के स्रोत के आधार पर आधुनिक हिन्दी काल में प्रमुख रूप से भाषा की तीन शैलियां दृष्टिगत होती हैं-- संस्कृत-बहुला,अरबी-फारसी-बहुला,और जनपदीय।शब्द-नियोजन या पद-विन्यास की संकुलता और सरलता के रूप में भाषा की सामासिकता तथा असामासिकता दिखाई देती है।

२-२-२ बिम्ब-विधान : कवि,काव्य में तर्कसंगत विधान नहीं करता,वह इन्द्रिय गोचर संवेदनाओं पर आधारित आशय को संवेदना-सक्षम शब्दों द्वारा रूप या स्पष्टता देने का प्रयास करता है।अर्थात् उसका उद्देश्य आशय को सप्राण करना होता है,[३] जिसके हेतु वह बिम्ब-प्रयोग या बिम्ब-विधान करता है।

---

१- (तु०) मर्ढेकर - बा० सी०, सौन्दर्य आणि साहित्य - पृ १२०

२- (तु०) आचार्य वामन -"विशिष्ट पदरचना रीति:"-

३- (अ) तु० मर्ढेकर - बा० सी०,सौन्दर्य आणि साहित्य - पृ१३२

(आ) Hungarland I- Poetic Discourse - P.14.

प्राय: विद्वानों ने 'बिम्ब' (*Image*) की व्याख्या करते हुए यह सर्वसम्मत रूप से स्वीकार किया है कि बिम्ब वह शब्द है जो इन्द्रियगोचर वस्तु के बोध का विचार उत्पन्न करता हो।[1] परन्तु इस संदर्भ में पाउण्ड द्वारा प्रस्तुत व्याख्या उल्लेखनीय है। उसके अनुसार "बिम्ब वह है जो समय के क्षणार्द्ध में बौद्धिक औ भावात्मक जटिलता को प्रस्तुत करता हो। क्षणार्द्ध में उक्त जटिलता का प्रस्तुतिकरण ही समय एवं अवकाश की सीमाओं से मुक्ति का अनुभव कराता है।[2] आशय यह कि बिम्ब विधान वह काव्यात्मक संरचना है, जो इन्द्रियगोचर वस्तु को भावात्मक एवं बौद्धिक जटिलता के साथ प्रस्तुत करती है।

२-२-३ प्रतीक-विधान : व्यावहारिक जगत में प्रत्येक शब्द का निश्चित संदर्भ या अर्थ में उपयोग किया जाता है, और उस संदर्भ या अर्थ के निश्चित होने के संबंध में कोई संदिग्धता नहीं रखी जाती। काव्य में शब्द, प्रथम शब्द कोष के अर्थ या अन्य संदर्भ से छूट जाता है, और इसी प्रकार यद्यपि वह अर्थ की परम्परा से विलग हो जाता है, फिर भी उसे अर्थ-विहीन नहीं कहा जा सकता। परम्परागत रूप में प्रयुक्त और अनेन प्रयोग-कर्ताओं की अनुभूतियों से लिपटे हुए प्रत्येक शब्द को कवि उसकी समग्रता के साथ उठा लेता है और उसमें निहित अर्थ की नवीनता, व्यापकता, तथा संकुलता को प्रकट कर देता है। इस प्रकार उक्त गुणवत्ता तथा अर्थवत्ता से युक्त शब्द जब अर्थ के छायातपों (*Shades*) को विस्तृत करते हैं, तो अर्थों के सुगठित या सुसम्बद्धित रूप में उनकी संकुलता प्रतीक की संज्ञा प्राप्त करती है।

स्वरूप तथा कार्य की दृष्टि से प्रतीक एवं प्रतीक-विधान विद्वानों की चर्चा का प्रमुख विषय रहा है। इन विद्वानों के विचारों का अनुशीलन निम्न-

१- Skelton Robin- The Poetic Pattern - P.90

२- Coffman Stanley K. Jr.- Imagism- P.141-142

-इस लिस्ति रूप में किया जा सकता है।प्रतीक का अर्थ 'चिह्न' माना जा सकता है परन्तु अन्य चिह्नों में और प्रतीक में अंतर यह है कि प्रतीक जिस वस्तु का संकेत करता है वह वस्तु प्रतीक से बड़ी होती है।अतः प्रतीक देखकर हमारी न जानकारी प्रतीक जितनी मर्यादित नहीं होती परन्तु वह प्रतीक से अधिक व्यापक आशय से युक्त होती है।इस प्रकार प्रतीक मन में व्यापक आशय का ग्रहण कराता है।[1]अतः कुछ विद्वान इस प्रकार प्रतीक को चिह्न के रूप में स्वीकार नहीं करते।[2] वस्तुतः प्रतीक,किसी वस्तु या पदार्थ के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले चिह्न ही नहीं हैं,अपितु वे वस्तु या पदार्थ के प्रत्यय-बोध (Conception),[3]अनुभूति,या जटिल और महत्वपूर्ण सचेत मनःस्थितियों के वाहक हैं।[4] अथवा संक्षेप में प्रतीक,[5]काव्य के उच्चतम मूल्यों के वाहक हैं।[6]आशय यह कि प्रतीक[7] विषयी और विषय,आशय और रूप, को मिला देता है।अथवा दूसरे शब्दों में प्रतीक के अंतर्गत विषयी और विषय,या रूप और आशय के अद्वैत की स्थापना हो जाती है।

प्रतीक के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने के हेतु काव्य के अन्य अंगों के साथ उसकी तुलना निम्नलिखित रूप में देखी जा सकती है।

---

१- मर्ढेकर,बा० सी० - सौन्दर्य आणि साहित्य - पृ ५२-५३
२- Tindall William York - The Literary Symbol - 1955 - P.19
३- Fiedelson, Charles, Jr: - Symbolism and American Literature - P. 52
४- Whalley George - Poetic Process - 1953, P.171
५- Ibid - P.167
६- Fiedelson, Charles, Jr: - Symbolism and American Literature - P.57
७- Ibid - P. 50

प्रतीक और चिह्न (*Sign*) :: यदि चिह्न का अर्थ ठीक संदर्भ, लिया जाय वह प्रतीक को अंतर्भूत कर सकता है, और यदि प्रतीक का अर्थ व्यंग्यात्मक विधि (*Suggestive device*) लिया जाय तो वह चिह्न को अंतर्भूत कर सकता है। परन्तु फिर भी दोनों में अंतर यह है कि चिह्न किसी निश्चित वस्तु या पदार्थ का ठीक संदर्भ है, जबकि प्रतीक किसी अनिश्चित वस्तु या पदार्थ का ठीक संदर्भ है। आशय यह कि चिह्न में प्रतीकात्मक मूल्य हो सकता है, परन्तु फिर भी मूलत: उसे संकेत (*Pointer*) ही माना जा सकता है।[१] अथवा दूसर शब्दों में कहा जा सकता है कि चिह्न वह बिम्ब है जिसमें प्रतीकात्मक मूल्य होते हुए भी काव्य में उसका गौण स्थान रहता है।[२]

प्रतीक और बिम्ब :: बिम्बवाचक शब्द और प्रतीक में अन्तर यह है कि, बिम्ब में प्रतीक के समान अर्थों की बहुलता तथा प्रतीकात्मक मूल्य निहित होने पर भी वह निश्चित संदर्भ से रहित नहीं होता, अथवा उसमें वह स्वतन्त्र सत्ता या स स्वायत्तता नहीं होती जो प्रतीक में होती है, क्योंकि बिम्ब अंतत: किसी प्रत्यय (*Concept*) या विचार की तुलना पर अवलम्बित होता है।[३] प्रतीक में अर्थ को अनेक छायातपों से युक्त निहारिका की तरह विस्तार देने की केन्द्रात्सारी प्रवृत्ति होती है। इससे भिन्न, जिस भाव-परिवेश का कवि अपनी कृति में सृजन करता है, उसे अपने केन्द्र में खींच सके ऐसा श्रवणगोचर या स्पर्शगोचर चित्र कवि बिम्ब में उत्पन्न करता है।[४] अत: प्रतीक परिधि में गति करता है, जब कि बिम्ब केन्द्रस्थ होता है।

---

१- Tindall William York - The Literary Symbol - P. 5-6

२- Skellon Robin - The Poetic Pattern - P. 102

३- उद्‌: अ- Ibid - P. 95, 102, आ- Tindall W. Y. - The Literary Symbol - P. 9

४- जोशी, सुरेश - क्षितिज -

प्रतीक और रूपक :: रूपक ( Allegory ), मात्र अमूर्त ( Abstract ) कल्पना या विचार का भाषा-चित्र में अनुवाद है, जो वस्तुत: इन्द्रियगोचर पदार्थ या वस्तु के अमूर्तिकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जबकि प्रतीक की यह विशेषता या लाक्षणिता है कि वह विशेष की सामान्य में, तथा सामान्य की विशेष में पारदर्शिता का परिचय या बोध देता है।[1] आशय यह कि काव्य में रूपक द्वारा वस्तु या व्यक्ति की आपातत: ( apparent ) स्वतन्त्रता दृष्टिगत होती है, यद्यपि वस्तुत: उनका अस्तित्व प्रत्यय या विचार अथवा नैतिक या चारित्रिक गुण के साथ किये गये उनके समीकरण पर निर्भर रहता है। अत: रूपक द्वारा 'अ' और 'ब' के रूप में तुलना के स्थान पर अ ब के समीकरण का बोध होता है, तथा यह समीकरण समान्तर चलता रहता है।[2] प्रतीक इसके विपरीत स्वतन्त्र, स्वायत्त, तथा स्वावलंबित होता है।

उपरोक्त तुलनात्मक अध्ययन को दृष्टि में रखते हुए प्रतीक के स्वरूप को निम्नलिखित स्वरूप में निरूपित किया जा सकता है --

१- प्रतीक, स्वतन्त्र तथा स्वायत्त होता है, अर्थात् वह कवि या स्रष्टा के[3] व्यक्तित्व तथा विशुद्ध वस्तु जात से नितान्त भिन्न होता है।[4] इस दृष्टि से वह किसी भी वस्तु का संकेत नहीं माना जा सकता। अर्थात् वह स्वयं एक वस्तु सिद्ध हो जाता है।

२- स्वतन्त्रता तथा उत्तेजकता (Stimulating Power ) प्रतीक के प्रमुख लक्षण

---

१- Coleridge S.T. - The Stateman's Manual: Complete Works (ed. Shedd, New York - 1853) Vol. I - PP. 437-8

२- Skellon Robin - The Poetic Pattern - P. 93

३- Fiedelson, Charles Jr - Symbolism and American Literature - P. 48

४- Whalley George - Poetic Process - P. 165-166

माने जा सकते हैं।[१]

३- प्रतीक, अपने अर्थ को स्वयं अस्तित्व प्रदान करता है, (अर्थात् किसी अन्य वस्तु, पदार्थ, विचार, या अनुभूति पर अवलम्बित नहीं होता)[२] अतः इस दृष्टि से उसे सृजनात्मक ( Creative )कहा जा सकता है।

४- प्रतीक सदैव तन्मयीभवन ( Contemplation ) की ओर ले जाता है, तर्क संगत निष्कर्ष की ओर नहीं।३

५- इस प्रकार प्रतीक को[३] दो दृष्टियों से देखा जा सकता है- (१) कला में प्रतीक, (२) प्रतीक में कला।

उक्त वैशिष्ट्यों के अतिरिक्त प्रतीक की एक अन्य विशेषता उल्लेखनीय है। विद्वानों के अनुसार दृष्यमान या इन्द्रियगोचर वस्तुओं की भाषा द्वारा प्रतीक इन्द्रियातीत (अथवा Supernatural ) अनुभूति को प्रेषित करता है।[४] इस दृष्टि से प्रतीक, कविता में रहस्य का योग करता है,[५] अतः[६] एक प्रकार की रहस्यवादी कविता को प्रतीकवादी कविता कहा जा सकता है।

'मिथ' (Myth ) :: उपरोक्त प्रतीक विधान के अंतर्गत 'मिथ' का उल्लेख किया जा सकता है। वस्तुतः जब प्रतीक द्वारा व्यंजित विविध अर्थ संकुचित होकर उनकी एक अन्विति बन जाय और वह समाज या राष्ट्र विशेष

---

१- Skelton Robin- The Poetic Pattern - P. 92, 102

२- Fiedlson, Charles Jr.- Symbolism and American Literature - P. 48

३- उद्ध:: Tindall William York- The Literary symbol- P. 6-7

४- Bowra C.M.- The Heritage of Symbolism - P. 5

५- Ibid- P. 9

६- Ibid- P. 12

की सांस्कृतिक धरोहर बन जाय, तब वह प्रतीक 'मिथ' के रूप में स्वीकार किया जायेगा। इस रूप में न वह पूर्ण प्रतीक रह पाता है, न रूपक, अपितु वह मिथ में संक्रमण कर जाता है। प्रतीक यदि अ ब अथवा ब स का रूप धारण कर ले तो वह रूपक माना जायेगा, परन्तु यही रूपक कालान्तर में जड़ हो जाने पर पूर्ण सत्य बनकर मिथ के रूप में स्वीकृत होगा।

आशय यह कि मिथ प्रतीकों का वह सुसम्बद्ध समूह माना जा सकता है, जिसके द्वारा ~~xxx~~ वास्तविकता या सत्य का व्यापक एवं सुसंवादी बोध हो सके।[1]

प्रतीक के स्वरूप का अध्ययन कर लेने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि प्रतीक का कार्यक्षेत्र सीमित भी है और व्यापक भी। अतः काव्य में शब्द या पद द्वारा, वाक्य द्वारा, छन्द द्वारा, एवं पूर्ण अनुबन्ध (प्रबंध) द्वारा प्रतीक निष्पन्न हो सकता है।[2] अतः स्वरूपात्मक दृष्टि से प्रतीक के तीन भेद माने जा सकते हैं-- (१) लघु प्रतीक, (२) मध्यम प्रतीक, (३) विराट प्रतीक।

२-३ महावाक्य-शिल्प :: आचार्यों ने महावाक्य की व्याख्या इस प्रकार की है- 'वाक्योच्चयो महावाक्यम्।' अर्थात् वाक्यों के समूह को महावाक्य कहा जाता है, जिसके उदाहरण विविध महाकाव्य हैं।[3] उक्त व्याख्या को कला-शिल्प की दृष्टि से स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि काव्य-कला के नियमानुसार विविध वाक्यों अर्थात् कलात्मक शब्द-गुच्छों द्वारा

---

१- उद्. Whalley George- The Poetic Process -P.181

२- Hungerland. I.- Poetic Discourse - P. 140

३- आचार्य विश्वनाथ - साहित्य दर्पण - द्वितीय ।।

निर्मित विशाल कलात्मक वाक्य-गुच्छ को महावाक्य कहा जा सकता है।[१]

उपरोक्त विवेचन को दृष्टि में रखते हुए निरालाजी के कला-शिल्प की सोदाहरण व्याख्या आगे की जा सकती है।

## ३- निरालाजी के कला-शिल्प की सोदाहरण व्याख्या ::

**३-१ पद-शिल्प** :: ध्वनि-गुण (२-१-१) के विषय में पहले जो विचार किया जा चुका है, उसके अनुसार निराला-काव्य का अध्ययन करने पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि निरालाजी भाव-शिल्प के जितने श्रेष्ठ विधायक है, उतने ही सफल वे काव्य-शिल्पकार हैं। उनकी रचनाओं में कलात्मक सज्जा का अभाव कहीं नहीं खटकता और न ही उसका सायास प्रयोग मिलता है। ध्वनि-गुणों के विषय में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने ध्वनि-गुणों का प्रयोग भाव, प्रसंग, एवं वातावरण के अनुकूल किया है, तथा ध्वनि गुणों की इस अनुकूलता के फलस्वरूप उनके काव्य-चित्र अधिक एवं ~~भक्कबर~~ भास्वर बन गये हैं। ध्वनि मे अंतर्निहित गुणों के अंतर्गत ओज~~पूर्ण कक~~ ध्वनि-गुण का परिचय निरालाजी की निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों में देखा जा सकता है--

"जागो फिर एक बार

सत् श्री अकाल,

---

१- (तु०) मर्ढेकर, बा० सी० - सौन्दर्य आणि साहित्य - पृ १२०

भाल-अनल धक-धक कर जला,
भस्म हो गया था काल-
तीनों गुण-ताप त्रय,
अभय हो गये थे तुम
मृत्युंजय व्योमकेश के समान'....[1]

इसी प्रकार 'राम की शक्ति पूजा' में युद्ध वर्णन के प्रसंग के अंतर्गत भाषा का जो प्रयोग निरालाजी ने किया है वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।इस कविता की निम्नलिखित पंक्तियों के पाठ के श्रवण से वर्ण्य का चित्र सहज ही उभर आता है।तत्सम,संयुक्त शब्द,और सामासिक शैली में ने एक विशेष ही ध्वन्यात्मक चमत्कार उत्पन्न किया है--

'आज का,तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर,वेग प्रखर,
शतशेलसम्वरणशील,नील नभ गर्ज्जित-स्वर,
प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह,-भेद-कौशल-समूह,-
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह,-क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,-
विच्छुरितवह्नि-राजीवनयन-हत-लक्ष्य-बाण,
लोहित लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान,
राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म प्रहर ,
उद्धत-लंकापति-मर्द्दित-कपि-दल-बल-विस्तर ------[2]

ईश्वर के प्रति अपनी विनयपूर्ण भक्ति भावना को अभिव्यक्त करते हुए ऋजुतापूर्ण ध्वनि-गुण का परिचय निरालाजी की निम्नलिखित काव्य पंक्तियों में दृष्टव्य है--

---

१- निराला - परिमल - पृ २०३
२- निराला - अनामिका - पृ-१४८

१- "मानव का मन शान्त करो है,काम,क्रोध,मद,लोभ,दम्भ से
जीवन को एकान्त करो है।"[1]

२- "शान्ति चाहू मैं,तुम्हारा दुखकारागार है जग....
हुआ सूना हृदय दूना,याद आया चरण-छूना,
कामना की रही बाकी माल पूंजी ले गये ठग...."[2]

व्यंग-काव्यों में भी निरालाजी ने ऋजु ध्वनियों का परिचय दिया है।व्यंग का यह सरस रूप उनकी परवर्ती रचनाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।यथा-
कुकुरमुत्ता,
रानी और कानी,मास्को डायलाग्स,[3] आंख,आंख का कांटा हो गई,[4] थोड़ों के पेटे में बहुतों को आना पड़ा,बापू तुम मुर्गी खाते यदि,आदि।वस्तुत: ध्वनि की ऋजुता और भाषा की सरलता ने उक्त कविताओं के व्यंगों को निष्कलुष कर दिया है।व्यंग,वस्तुत: इन कविताओं द्वारा व्यंजित प्रसंग या पात्र के संपूर्ण चित्र में है,परन्तु कहीं कहीं वह वाक्य या उक्ति की वक्रता में भी दृष्टिगत होता है।

भवों की आर्द्रता,मृदुता,तथा सरसता की अभिव्यक्ति के हेतु निरालाजी ने मधुर ध्वनियों का परिचय दिया है।उनकी श्रृंगार प्रधान रचनाओं के अंतर्गत उक्त ध्वनि-गुण के अनेक उदाहरण मिलते हैं।यथा--

"दीपित दीप-प्रकाश,कंज-छवि मंजु-मंजु हंस खोली--
मली मुख चुंबन-रोली।"[5]

---

१- निराला- अर्चना - पृ ६४
२- निराला- बेला - पृ ५९
३- निराला- नये पत्ते - पृ १५,२५,२७,२९
४- निराला- गीतगुंज - पृ ६३
५- निराला- गीतिका - पृ ४६

ध्वनि-गुणों की दृष्टि से यह तथ्य उल्लेखनीय है कि निरालाजी ने अपनी अधिकांश रचनाओं में समान ध्वनि-आवृत्ति तथा समान ध्वनि-गुच्छ आवृत्ति का विशेष रूप से परिचय दिया है। परन्तु यह कार्य इस प्रकार किया गया है कि उसके लिये परम्पराप्राप्त शब्द - अनुप्रास और यमक का सर्वत्र निर्भ्रान्त रूप से प्रयोग नहीं किया जा सकता। आशय यह कि समान ध्वनियों और ध्वनि-गुच्छों की आवृत्ति अवश्य मिलती है, परंतु यह आवृत्ति अलंकार शास्त्र के लक्षणों से मुक्त है। अर्थात् अलंकार की सीमा में रहते हुए भी उनके ये प्रयोग अलंकार शास्त्र के नियमों से जकड़े हुए नहीं हैं। इस दृष्टि से निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य है-

'सोती थी सुहाग भरी स्नेह-स्वप्न-मग्न,
अमल-कोमल तनु तरुणी- जुही की कली'[१]

उक्त पंक्तियों में १३ व्यंजन और ७ स्वरों का प्रयोग किया है। व्यंजनों में केवल 'भ' ही एक ऐसा व्यंजन है जो पुनरावृत्त नहीं है। इसी प्रकार स्वरों में 'इ', 'आ', 'ए' ऐसे स्वर हैं जो एक से अधिक बार नहीं आते। शेष सभी स्वर विविध रूपों में पुनरावृत्त हुए हैं। ३ से अधिक बार आनेवाले स्वर-व्यंजन निम्नलिखित हैं - स्वर - अ , ई , उ , व्यंजन - न, स, क, त, र। इसी प्रकार स्व, स्न, प्न, ग्न, मल - ध्वनि-गुच्छ भी पुनरावृत्त मिलते हैं। अलंकार शास्त्र की दृष्टि से सर्वांश इन्हें अनुप्रास और यमक नहीं कहा जा सकता, परंतु निरालाजी के उक्त प्रकार के प्रयोगों में अनुप्रासत्व तथा यमकत्व की झलक सर्वत्र है। वस्तुतः इन्हें निरालाजी के मुक्त अलंकार-प्रयोग का प्रमाण कहा जा सकता है। उक्त दृष्टि से निम्नलिखित कविताएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं - सेवा[२], पतनोन्मुख[३], बादल - राग[४], रहा तेरा ध्यान[५],

---

१- निराला-परिमल-पृ २१६ , २- वही- पृष्ठ-३०-३१

३- वही - पृ ४२ , ४- वही- पृ-१७५-१८६

५- निराला-गीतिका-पृष्ठ- ६४

घोर शिशिरल डूबा जा अस्थिर[1],आदि ।

ध्वनि-गुण-विन्यास:- सापेक्ष ध्वनि-गुण,तथा ध्वनि-गुण-विन्यास के अन्तर्गत जिन तत्वों की चर्चा पहले की गई है(२-१-१,२-१-२) उनका संबंध मूलत: छन्दशास्त्र के साथ है। हिन्दी के प्राचीन तथा अर्वाचीन छन्दशास्त्रीय ग्रंथों में उक्त तत्वों की चर्चा विविध रूपों में प्राप्त होती है। निराला जी ने जिन छन्दों के प्रयोग किये हैं,तथा उन्होंने जिन छन्दों में नवीन प्रयोगों का परिचय दिया है,उन छन्दों का प्राचीन तथा हिन्दी काव्य एवं छन्दशास्त्र दोनों से संबंध है।यह भी उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य प्रतीकवादी कवियों के समान ही निरालाजी ने भी छन्दों के क्षेत्र में नये प्रयोग भारत की प्राचीन परम्परा के आधार पर ही किये हैं,तथा उनके प्रयोगों से स्वकीय छन्द परम्परा को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंची है।वस्तुत: इन प्रयोगों के फलस्वरूप छन्दों के विकास की नयी संभावनाएं उद्घाटित हुई हैं।निरालाजी और पाश्चात्य प्रतीकवादी कवि-बादलेयर,मेलार्मे,वालेरी आदि के छन्द-प्रयोगों में-प्रक्रिया आदि तथा पूर्ववर्ती साहित्य के प्रभाव की समानता ही मिलती है।वस्तुत: उक्त समानता के अन्तर्गत कवियों की प्रकृति,प्रतिभा और तद्देशीय संस्कृति,परिवेश,आदि का साम्य अवश्य देखा जा सकता है,परंतु स्पष्ट प्रभाव नहीं।

अतएव प्रथम संक्षेप में निरालाजी की छन्द-परम्परा और उसकी प्रकृति के विषय में विचार कर लेने के पश्चात् ही,छन्दों में ध्वनि-गुण और उनके विन्यास की दृष्टि से निरालाजी के छन्द-प्रयोगों का अध्ययन करना अधिक तर्कसंगत सिद्ध होगा।

---

१- निराला-गीतिका-पृष्ठ ९८

वस्तुत: हिन्दी छन्द-परम्परा, संस्कृत तथा अपभ्रंश के छन्दों की परम्परा पर आधारित है। संस्कृत तथा अपभ्रंश के अनेक छन्दों को हिन्दी के कवियों ने यथावत् स्वीकार कर लिया था। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि यद्यपि आदिकाल में प्राकृत तथा अपभ्रंश के छन्दों का प्राधान्य रहा, परंतु प्राकृत-पैंगलम आदि कुछ ग्रंथों में परवर्ती हिन्दी के प्रमुख छन्द - कवित्त, सवैये आदि भी मिलने लगते हैं। वस्तुत: ये छन्द संस्कृत तथा अपभ्रंश की परम्पराओं के मिश्रण पर आधारित हैं, अत: इन्हें संस्कृत, प्राकृत आदि का छन्द न कहकर हिन्दी के स्वकीय छन्द के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है। यह कहना उचित जान पड़ता है कि भक्तिकाल और रीतिकाल की सीमा में, छन्दों के क्षेत्र में सूर, तुलसी, रहीम, देव, बिहारी आदि ने जो नये प्रयोग किये हैं, उनके कारण ही हिन्दी का स्वतंत्र छन्दशास्त्र अस्तित्व में आया है। इसीलिये इस काल में पिंगल या छन्दशास्त्र के विविध ग्रंथ लिखे गये। उत्तर रीतिकाल में यद्यपि छन्दों के प्रयोग के क्षेत्र में रूढ़िवादिता अवश्य आने लगी थी, परंतु कतिपय आधुनिक हिन्दी कवियों के छन्दों के समान उनके छन्द-प्रयोग दोषयुक्त या भ्रष्ट नहीं थे।

आधुनिक काल में, छन्दों के क्षेत्र में नये प्रयोग भारतेन्दु-काल में ही होने लगे थे। इस दृष्टि से हरिऔधजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू आदि अनेकविध छन्द-शैलियों को हिन्दी में नियोजित किया है। छायावाद के अनेक कवियों ने बंगला तथा अंग्रेजी के प्रभाव का परिचय भी अपने छन्दों में दिया। इस काल में एक ओर सानेट आदि छन्दों का निर्माण हो रहा था, तथा दूसरी ओर शास्त्रीय संगीत एवं लोकगीतों की धुनों का प्रचार भी हिन्दी में बढ़ रहा था। सर्वश्री रूपनारायण पांडेय, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसादजी, पन्तजी आदि अनेक कवियों ने हिन्दी में अपने-अपने विशिष्ट एवं नवीन छन्द-प्रयोगों के साथ पदार्पण कर लिया था ।

---

जिस समय निरालाजी का हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में आगमन हुआ ,उस समय हिन्दी छन्दों की परम्परा में नवीन प्रयोगों का एक आंदोलन आरंभ हो चुका था। निरालाजी भी इस काल में मुक्त छंदों का प्रणयन कर चुके थे, जिसका परिचय हिन्दी जगत को प्रथम उनकी `मतवाला` में प्रकाशित रचनाओं द्वारा तथा तत्पश्चात् `परिमल` के प्रकाशन द्वारा हुआ। इसके बाद निरालाजी ने मुक्त गीतों के रूप में छंदों के अभिनव प्रयोग का परिचय `गीतिका` की रचनाओं द्वारा दिया। परंतु यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि यद्यपि अनेक अन्य आधुनिक कवियों के समान ही निरालाजी ने छंदों के क्षेत्र में नये प्रयोग किये हैं, परंतु अन्य कवियों के प्रयोग, प्रयोग ही हैं। वे निरालाजी के प्रयोगों के समान दिग्विजयी, भावी पीढ़ी द्वारा समादृत तथा विकसित प्रयोग नहीं हैं। सूर, तुलसी के प्रयोगों के समान निरालाजी के छंद-प्रयोगों ने, भावी हिन्दी के छंदों के विकास की अनन्त संभावनाएं उद्घाटित कर दी हैं। निरालाजी वैदिक कवियों के समान छन्दों का अत्यंत अनुशासनपूर्ण प्रयोग स्वीकार करते हैं, परंतु साथ ही उन्हें छंदों का अत्यंत उच्छृंखल रूप भी स्वीकार्य है। उनकी दृष्टि में छंद के रूप का नियामक, काव्य का रूप है, काव्य-रूप का नियामक छंद नहीं। छंद में काव्य नहीं रचा जाता, वरन् काव्य में छंद रचा जाता है, यह उनका मूल दृष्टिकोण है। आशय यह कि काव्य की अभिव्यक्ति छंदोमय ही होगी क्योंकि उसमें काव्य का प्रवाह अभिव्यक्त होता है। काव्य का प्रवाह ही छंद का प्रवाह है, जिसे निरालाजी ने छंद की आत्मा माना है। मुक्त छंद की सृष्टि का रहस्य तथा उसकी शास्त्रीय व्याख्या को निरालाजी द्वारा प्रतिपादित उक्त सिद्धान्त द्वारा ही समझा जा सकता है। मुक्त छंद - क्योंकि मुक्त भी है और छंद भी, अत: वह निश्चय ही अनंत संभावनाओं से युक्त है। हिन्दी के छंद प्रयोग इसी व्याख्या के आधार पर और भी अधिक विकसित किये जा सकते हैं ।

---

निरालाजी द्वारा प्रतिपादित प्रवाह के उक्त सिद्धान्त के मूल में एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह है कि,छन्द का यह प्रवाह भाषा की प्रकृति और काव्य के आशय के प्रतिकूल नहीं हो सकता,और न ही होना चाहिए।यदि छंद-प्रवाह,भाषा-प्रवाह,तथा काव्याशय में वैषम्य होगा तो,न वह छंद कहा जा सकेगा और न उसे काव्य की ही संज्ञा दी जा सकेगी।

मुक्त छंद के कर्ता,परस्कर्ता,प्रचारक तथा प्रतिष्ठापक आदि के कारण निरालाजी को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है,परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि निरालाजी ने मुक्त छंद के अतिरिक्त अन्य छंदों की रचना नहीं की है,अथवा अन्य छंदों में नये प्रयोग नहीं किये हैं।निरालाजी को अंग्रेजी और बंगला साहित्य में प्रयुक्त छंदों का भी विशेष ज्ञान था।अतः उनकी रचनाओं में अंग्रेजी तथा बंगला के छंदों का भी प्रयोग मिलता है।[1] अतएव उनके द्वारा प्रयुक्त छंदों को तथा उसमें किये गये नवीन प्रयोगों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है-

१- परम्पराप्राप्त छंद,२- मौलिक मुक्त छंद,३- मौलिक पारम्परिक छंद।

१- निरालाजी के परम्परा-प्राप्त छंद :: प्राचीन तथा अर्वाचीन हिन्दी में प्रयुक्त विविध छंदों का प्रयोग निराला-काव्य में मिलता है,जिससे सिद्ध होता है कि निरालाजी को पारम्परिकहिन्दी छंदशास्त्र का न केवल सम्यक् ज्ञान था,परन्तु वे परम्पराप्राप्त हिन्दी छंदों का सफल प्रयोग करने में समर्थ हुए थे।निरालाजी द्वारा प्रयुक्त समस्त परम्पराप्राप्त छंदों का अध्ययन प्रस्तुत शोध-प्रबंध की सीमा में सम्भव न होने के कारण उनमें से कतिपय छंदों का ही अध्ययन यहां किया जा रहा है।

निरालाजी ने मात्राओं की संख्या क्रम के आधार पर लीला छंद का प्रयोग[2] किया है।यह छंद विशेष रूप से शास्त्रीय संगीत के अनुकूल बताया गया है।प्रस्तुत

१- शुक्ल,पुत्तुलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ
२- वही - पृ २४८

छंद का उदाहरण निम्नलिखित है -

स्तब्ध अंधकार सघन,
मन्द गंध-भार पवन,
ध्यान-लग्न, नैश गगन,[1]
मुंदे पल नीलोत्पल ।

उपरोक्त छंद में प्रत्येक पंक्ति में ६-६ मात्राओं की समानता दृष्टव्य है। साथ ही इस छंद में ध्वनि-साम्य की दृष्टि से, अ ब क- इस प्रकार की क्रम-योजना प्रथम तीन चरणों के अन्त में दिखायी देती है।इसके अतिरिक्त इस छंद में त,द,ध,न,- दन्त्य ध्वनियों की क्रमयुक्त आवृत्ति भी दृष्टव्य है।इनमें ध तथा न ध्वनि की आवर्तन गति में प्रथम ध तथा पश्चात् न की ध्वनि-योजना मिलती है।

फारसी के 'फ़ायलुन मुफ़ायलुन मुफ़ायलतुन' के वज़न के आधारपर निरालाजी ने पुराण छंद का प्रयोग किया है।इसका मात्रिक रूप इस प्रकार बताया गया है[2] - ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽऽऽ । इस छंद का उदाहरण निम्नलिखित है-

हाथ मारते फिरे कहां के हैं,
ये गुफलत से घिरे जहां के हैं,
अपनी तरणी तिरे यहां के हैं,[3]
इनसे जैसा चाहे कह ले ।

उक्त छंद में प्रथम तीन चरणों में १८ मात्राएं हैं,तथा अंतिम चरण में १६ मात्राएं हैं। ए स्वर की आवृत्ति इस छंद में विशेष रूप से दृष्टव्य है,तथा प्रथम तीनों चरणों के अंत में,अ ब क ध्वनि-साम्य के अतिरिक्त अंतिम दो वर्णों का मात्रा-साम्य मिलता है।

---

१- निराला-गीतिका-पृष्ठ-७३

२- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-२७२

३- निराला-बेला-गीत-३६

निरालाजी ने तमाल छंद[1] का प्रयोग किया है, जो चौपाई में । जोड़ने से बनता है। यद्यपि उनके द्वारा इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता, स्फुट पंक्तियों में इसके उदाहरण दृष्टव्य हैं -

१- आप निकल पड़ी।ता तब एक वि।हाथ ।[2]
२- मेरे दग्ध हृदय का ही था।ताप ।[3]

उक्त पंक्तियों की मात्राओं की क्रम-योजना इस प्रकार है - ८-८-३ - १६ मात्राएं।

त्रिकल के आधार पर २० मात्राओं के चरणों का प्रयोग गीतिका में निरालाजी ने किया है, जिसे भृंगचुंबित छंद[4] बताया गया है। इस छंद में ६,६,६ मात्राओं के बाद यति आती है। इस छंद का निम्नलिखित उदाहरण डा० पुत्तु लाल शुक्ल ने दिया है। उन्होंने गीत की पंक्तियां छांट कर यह छंद प्रस्तुत किया है[5]--

हुआ प्रात।, प्रिय तुम। जावगे च।ले,
कैसी थी रात, बंधु थे गले गले।
परिचय परिचय पर जा गया भेद शोक,[6]
छलते सब चले एक अन्य के छले।

उक्त छंद के अंतर्गत तीसरे चरण में[7] एक मात्रा अधिक है, जिसे डा० पुत्तुलाल शुक्ल ने ~~सवैक~~ सौषाम्यवैचित्र्य कहा है। उक्त छंद में पहले, दूसरे तथा चौथे चरण में के अंत में ध्वनि साम्य की क्रम योजना का स्वरूप अ ब ड इस प्रकार रखा गया है।

---

१- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-२७४
२- निराला-परिमल-पृष्ठ-१३६-१३७ , ३- वही-पृष्ठ-१६३
४- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-२७८
५- वही-पृष्ठ-२७८
६- निराला-गीतिका-गीत-६१
७- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-२७८

निरालाजी ने कुंडल छंद का अर्द्धसम प्रयोग किया है।कुंडल छंद में १२ मात्राओं के बाद यति होती है और अंत में दो गुरु होते हैं।इस छंद के संगीतात्मक होने के कारण निरालाजी द्वारा इनका प्रयोग प्राय: गीतों में ही हुआ है।[1] इस छंद का उदाहरण निम्नलिखित है--

जननि,जनक-।जननि-जननि।
　　　　जन्म-भूमि।भाषे
जागे,नव। अम्बर भर,
　　　　ज्योति-स्तर।वासे।[2]

उक्त छंद में प्रथम तथा तीसरे चरण में मात्राओं की क्रम योजना इस प्रकार है-- ६ + ६,६+ ६,तथा दूसरे और चौथे चरण में मात्राओं की क्रम योजना ६+ ४,६+ ४ इस प्रकार है।वस्तुत: इस छंद में ६,१२,और १८ मात्राओं के बाद अल्प यति होती है,क्योंकि यह छंद षाष्ठक की तीन आवृत्तियों और चतुष्कल के योग से बनता है।यह षाष्ठक अधिकांशत: दो त्रिकलों अर्थात्[3] । । के और कभी कभी चौकल तथा द्विकल के योग से बनता है।

निरालाजी ने अपनी रचनाओं में विविध मात्राओं के अर्द्धसम मात्रिक छंदों को नियोजित किया है।वस्तुत: जिस छंद के आधे चरण अर्थात् दो चरण एक समान हों और आधे एक समान,उस छंद को आचार्यों ने अर्द्धसम छंद कहा है।[4] इस छंद का जन्म,समछंद की एकरसता को समाप्त करने के हेतु हुआ होगा ऐसा विद्वानों का मत है।[5]

---

१- शुक्ल,पुत्तूलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ२८३

२- निराला - गीतिका - गीत ७८

३- शुक्ल,पुत्तूलाल -आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ २८३

४- वही-पृष्ठ- ३०६ , ५- वही-पृष्ठ- ३०६

निरालाजी द्वारा प्रयुक्त १२ मात्राओं के नवीन अर्द्धसम मात्रिक छंद का उदाहरण निम्नलिखित है--

अ। शब्द हो गई वीणा,
विभास बजता था।
अमिय-दारण नवजीवन,
समास बजता था।[1]

उक्त छंद में दूसरे तथा चौथे चरण में १० मात्राओं का साम्य है,परन्तु पहले चरण में अपवाद के रूप में[2] एक मात्रा अधिक है,अन्यथा पहले और अंतिम चरण में १२ मात्राओं का साम्य मिल जाता।इस छंद में पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण में समानता दृष्टव्य है।आचार्यों के[3] अनुसार इस प्रकार की समानता जिस छंद में हो,वही अर्द्धसम छंद होता है।हिन्दी के अर्द्धसम छंदों में प्राय: दूसरे[4] और चौथे चरणों के अंत में ध्वनि साम्य मिलता है,ऐसा विद्वानों का मत है।उपरोक्त छंद में दूसरे और चौथे चराणों के अंत में शब्द-गुच्छ ध्वनि-साम्य दृष्टव्य है।

निरालाजी द्वाराप्रयुक्त १६ मात्राओं के अर्द्धसम मात्रिक छंद के उदाहरण इस प्रकार हैं--

अ- काल वायु से स्खलित न होंगे
कनक प्रसून ?
क्या पलकों पर विचरे हो गी
यौवन धूम ?[5]

---

१- निराला- बेला- गीत १८ ; २- शुक्ल,पु०-आ० हि० का० में छं० योजना,पृ ३११
३- आचार्य केदार भटट - वृत्तरत्नाकर,अ० १-१५; आ० गंगादास,छंदोमंजरी,प्र० ६
४-शुक्ल,पुत्तुलाल- आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ ३०६
५- निराला - परिमल - पृ ६२

उक्त छंद के पहले और तीसरे चरण में १६ मात्राएं तथा दूसरे और चौथे चरण में सात मात्राएं है।इस प्रकार १६,७ मात्राओं से युक्त इस छंद को निश्चल छंद का अर्द्धसम रूप बताया गया है।[1]

आ- नयन मुंदेगे जब,क्या देंगे,
चिर प्रिय-दर्शन ?
शत सहस्र जीवन पुलकित प्लुत-
प्यालाकर्षण ?[2]

उक्त छंद में पहले और तीसरे चरण में १६ मात्राएं हैं,तथा दूसरे और चौथे चरण में ८ मात्राएं हैं।यह रोला छंद का अर्द्धसम रूप बताया गया है।[3]

सोलह मात्राओं के वीर छंद का अर्द्धसम रूप निरालाजी के निम्न-लिखित छंद में दृष्टव्य है--

फूले फूल सुरभि व्याकुल अलि
गूंज रहे हैं चारों ओर,
जगती तल में सकल देवता
भरते शशि मृदु हंसी हिलोर।[4]

उक्त छंद में पहले और तीसरे चरण में १६ मात्राएं हैं,तथा दूसरे और चौथे चरण में १५ मात्राएं हैं।

परस्पर लय-मैत्रीयुक्त,विषम अथवा असमान चरण के विषम विकर्षा-धार छंदों का प्रयोग निरालाजी ने किया है।इन छंदों का वैशिष्ट्य यह है

---

१- शुक्ल,पुत्तूलाल,आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना,- पृ ३१२
२- निराला - परिमल - पृ६३
३- शुक्ल,पुत्तूलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ ३१२
४- निराला - अनामिका - पृ १०४

कि येह छंद जिस रूप में ~~सब~~ पहली इकाई में प्रयुक्त होते हैं,उसी रूप में यथा उसी क्रम में वे दूसरी इकाईयों में भी समग्रता से प्रयुक्त होते हैं।इन छंदों के चरणों का क्रम अपरिवर्तित रहता है।[1]

निरालाजी द्वारा प्रयुक्त आठ मात्राओं के विषम विकर्षाधार छंद का उदाहरण इस प्रकार है--

गीत गाओ
गले लगाओ,
हुआ ग़ैर जो,सहज-सगा हो,[2]
करे पार जो है अति दुस्तर।

उक्त छंद में प्रथम दो चरणों की इकाई में ~~अवठ-को~~ ८,८ मात्राएं हैं,तथा शेष दो चरणों की इकाई में १६,१६ मात्राएं हैं।ये ८ और १६ मात्राएं चौपाई के अष्टक के आधार पर ही चलती हैं।[3]

१२ मात्राओं के विषम विकर्षाधार छंद का प्रयोग निरालाजी के निम्नलिखित छंद में मिलता है--

कण कण कर।कंकण,प्रिय।
किण किण रव।किंकिणी,।
रणन रणन।नूपुर उर।लाज,
लौट।रंकिणी,
और मुखर।पायल स्वर।करे बार।बार,[4]
प्रिय पथ पर।चलती,सब।कहते शृं।गार।

---

१- शुक्ल,पुत्तुलाल -आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ ३४५
२- निराला - अणिमा - पृ ११
३- शुक्ल,पुत्तुलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ ३४६
४- निराला - गीतिका - पृ ८

उक्त छंद के पहले और दूसरे चरण में क्रमशः १२ और ११ मात्राएं हैं,इस प्रकार प्रथम दो चरणों की इकाई में २३ मात्राएं मिलती हैं,तीसरे और चौथे चरण की इकाई में भी १५+ ८ मात्राओं के योग से २३ मात्राएं मिलती हैं। इसी प्रकार पांचवें और छठे चरण में २१,२१ मात्राओं की समानता है।इस छंद के सभी चरणों में लय की समानता दृष्टव्य है।इस छंद में क,र,और ण ध्वनि की विशेष आवर्तन गति के कारण तथा ण ध्वनि के सातत्य के फलस्वरूप छंद द्वारा कंकण और नूपुर की ध्वनियों की व्यंजना हुई है।

निरालाजी द्वारा प्रयुक्त १३ मात्राओं के विषम विकर्षाधार छंद का उदाहरण इस प्रकार है--

तुम तुंग हिमालय श्रृंग
और मैं चंचल जल सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी कविता।
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरापान घन अंधकार
मैं हूं मतवाली भ्रांति।
तुम दिनकर के खर किरण जाल,
मैं सरसिज की मुस्कान।
तुम वर्षों के बीते वियोग[1]
मैं हूं पिछली पहचान।

उक्त छंद में १,३,५,७,९,११ इन चरणों में १३ मात्राओं का प्रयोग है,और दूसरे तथा चौथे चरण में १७ मात्राओं के प्रयोग को छोड़ कर ६,८,१० चरणों में १६ मात्राएं हैं।डा० पुत्तुलाल शुक्ल ने इस छंद में सार और सरसी का संयोग स्पष्ट

---

१- निराला - परिमल - पृ८४

किया है। उन्होंने १३+१७ मात्राओं के चरणों में सार लय को स्वीकार किया है, परंतु इन ३० मात्राओं में ताटंक की लय नहीं है, अतः उन्होंने '२+सार' यह रूप निश्चित किया है। इसी प्रकार १३+१६ मात्राओं के चरणों में '२+सरसी' का निर्माण हुआ है। अतएव[1] इस दृष्टि से उक्त छंद में सार और सरसी का मूलाधार स्पष्ट होता है।

१६ मात्राओं के विषम विकर्णाधार छंद का प्रयोग निरालाजी के निम्नलिखित छंद में मिलता है। सबसे अधिक विषम-विकर्णाधार-मूलक[2] छंद इसी वर्ग के हैं, क्योंकि यह हिन्दी की सर्वाधिक प्रिय लय है:-

अलि, घिर आए घन पावस के।
लख ये काले काले बादल,
नील सिंधु में खुले कमल दल,
हरित ज्योति चपला[3] अति चंचल,
सौरभ के रस के ।

उक्त छंद में प्रथम ४ चरणों में १६ मात्राएं तथा अंतिम चरण में १० मात्राएं हैं। पूरा छंद समप्रवाही है।

इसी प्रकार उपरोक्त विषम विकर्णाधार[4] वर्ग के अंतर्गत निरालाजी २० तथा २४ मात्राओं के छंद-प्रयोग भी किये हैं।

निरालाजी ने विविध मात्राओं के प्रयोग द्वारा छन्दक तथा सम्पद का

---

१- शुक्ल पुत्तलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-३५०,३५१

२- वही-पृष्ठ-३५६

३- निराला-परिमल-पृष्ठ-१०२

४- शुक्ल पुत्तलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-३६४-३६६

भी काव्य में विनियोग किया है।इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं-

१) ६ मात्राएं -

मौन रही।हार,
प्रिय पथ पर।चलती,सब।कहते।श्रृंगार ।[१]

उक्त उदाहरण में ऽ।,।ऽ/ऽ। छन्दक का प्रयोग भृंगावर्तक चरणों के साथ हुआ है।[२] पहले चरण में ६+३ मात्राएं तथा दूसरे चरण में ६+६+६+३ मात्राएं हैं ।

२) १० मात्राएं -

अ- सरि,धीरे।बह री
व्याकुल उर।दूर मधुर।,तू निष्ठुर,।रह री। ।[३]

उक्त उदाहरण में भी छन्दक का प्रयोग भृंगावर्तक चरणों के साथ हुआ है।[४] प्रथम चरण में ६+४ मात्राएं तथा दूसरे चरण में ६+६+६+४ मात्राएं हैं।

आ- मेघ के घन।केश,
निरुपमे,नव।वेश,
चकित चपला।के नयन नव।,
छा रहा सब।देश। ।[५]

उक्त उदाहरण में( ।।ऽऽ/।ऽ )[६]छन्दक का प्रयोग अन्त्यावर्तक या सप्तकाधार चरणों के साथ हुआ है। १,२,४, चरणों में मात्राक्रम ७+३ तथा तीसरे चरण में ७+७ इस प्रकार है।

---

१- निराला-गीतिका-पृष्ठ-८

२- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-३७३

३- निराला-गीतिका-पृष्ठ-२१

४- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-३७३

५- निराला-गीतिका-पृष्ठ-५०

६- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-३७४

इ- बल्ली निराधार
पृथ्वी गगन में आतनु में सुतनु हार।
शब्द स्वर के भरे।
विचरे अनल भार।[1]

उक्त उदाहरण में (IISIS/SI) छन्दक का प्रयोग हरावर्तक या पंचकाधार चरणों के साथ हुआ है।[2] १,३,४, चरणों का मात्राक्रम ५+५ है,तथा दूसरे चरण का ५+५+५+५ मात्राक्रम है।दूसरा,चौथा चरण तगणात्मक है,तथा तीसरा चरण रगणात्मक है।

३) १६ मात्राएं -
बह चली अब अलि,शिशिर समीर
कांपी भीरु मृणाल वृन्त पर,
नील कमल कलिकाएं थर-थर,
प्रात अरुण को करुण अश्रु भर,
लखतीं अहा अधीर ।[3]

उक्त उदाहरण में प्रथम चार चरणों में १६ मात्राएं हैं तथा पांचवें चरण में ११ मात्राएं हैं।पहले तथा पांचवें चरण के अन्त में गुरु लघु तथा २,३,४, चरणों के अन्त में लघु लघु है।इस छंद का पहला चरण श्रृंगार[4] छंद का है,२,३,४, चौपाई चरण हैं,तथा पांचवां अहीर छंद का चरण है।

इनके अतिरिक्त निरालाजी ने स्त्रग्विणी छंद के आधार पर २० मात्राओं[5]

---

१- निराला-गीतिका-पृष्ठ-६८
२- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-३७४
३- निराला-गीतिका-पृष्ठ-१०
४- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-३८०
५- वही-पृष्ठ-३८२

के,रोला छंद[1] के आधार पर २४ मात्राओं के,विष्णुपद छंद[2] के आधार पर २६ मात्राओं के,तथा सार छंद[3] के आधार पर २८ मात्राओं के,छन्दकों का प्रयोग भी किया है।

२-निरालाजी के मौलिक छंद(मुक्त छंद):: मुक्त छंद का स्वरूप:-

मुक्त छंद का मूल आधार घनाक्षरी छंद है,जो मात्रा और अक्षर के सिद्धान्तों के मिश्रण पर आधारित है।[4] इसका कारण यह कि वह मुख्य रूप से गणात्मक है,और गणों के मूल में अक्षरों की निश्चित सीमा में मात्राओं की मुक्ति रहती है। निरालाजी के मुक्त छंद में मात्रा और अक्षर दोनों की मुक्ति दिखायी देती है,परंतु[5] उसकी गति या निरालाजी के शब्दों में उसका प्रवाह घनाक्षरी के समान है।वस्तुत: घनाक्षरी छंद का मुक्त स्वभाव या उसके प्रवाह की मुक्तता अन्य परम्पराप्राप्त छंदों की तुलना मेंविशेष नहीं कही जायगी,परंतु अन्य छंदों से भिन्न,घनाक्षरी में यति और विराम के विविध रूप प्राचीन छंदशास्त्रों में उल्लिखित हैं।प्राचीन आचार्यों ने इसे मुक्तक भी कहा है।[6] निरालाजी ने इस छंद की प्रकृति के अनुकूल जो नये प्रयोग किये हैं,उन्हें ही सामूहिक रूप से निरालाजी ने मुक्त छंद के नाम से अभिहित किया है।इस प्रकार निरालाजी ने मुक्त छंद के विविध प्रयोग किये हैं जिनमें शास्त्रीय नियम-राहित्य और प्रवाहेण छंद की समानता ही सर्वं सामान्य रूप से दृष्टिगत होती है।प्रत्येक मुक्त छंद कि अपनीप्रयोग की स्वकीय विशिष्टताओं से युक्त होता है,इसीलिये

१- शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-३८३

२- वही-पृष्ठ-३८४

३- वही-पृष्ठ-३८४

४- तुल: निराला-परिमल-भूमिका-पृष्ठ-१६

५- वही-पृष्ठ-१६

६- आचार्य भानु-छन्द प्रभाकर-पृष्ठ-२१४

विद्वानों ने मुक्त छंद को विकास[1] की अनन्त संभावनाओं से युक्त मानते हुए उसे दिग्विजयी घोषित किया है।

निरालाजी द्वारा निर्मित मुक्त छंद का एक उदाहरण[2] नीचे दिया जा रहा है।डा०पुत्तुलाल शुक्ल ने इसे अक्षर-मात्रिक छंद कहा है।

१- विजन वन।वल्लरी पर।
२-सोती थी सुहाग भरी।स्नेह स्वप्न।मग्न।
३-अमल कोमल तनु।तरुणी जुही की कली।
४-दृग बन्द किये।,शिथिल पत्रांक में,।
५-वासन्ती।निशा थी,।
६-विरह-विधुर।प्रिया-संग।छोड़
७-किसी।दूर देश।में था पवन
८-जिसे।कहते हैं।मलयानिल।
६-आयी याद।बिछुड़न से।मिलन की वह।मधुर बात।,
१०-आयी याद।चान्दनी की।धुली हुई।आधी रात,।
११-आयी याद।कान्ता की।कम्पित कम।नीय गात,।
१२-फिर क्या?पवन।
१३-उपवन सर।सरित गहन।गिरि कानन।
१४-कुंजलता।पुंजों को।पार कर,
१५-पहुंचा जहां।उसने की।केली
१६-कली।खिली साथ।
१७-सोती थी,।
१८-जाने कहो।कैसे प्रिय-।आगमन वह?।

---

१-'रसवन्ती'-२२ जुलाई १६६२-गुप्त किशोरीलाल-पृष्ठ-३३८

२-शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-४२६

१६-नायक ने।चूमे कपोल,

२०-डोल उठी।वल्लरी की।लड़ी जैसे।हिंडोल।

२१-इस पर भी।जागी नहीं।

२२-चूक क्षमा।मांगी नहीं।

२३-निद्रालस।बंकिम वि।शाल नेत्र मूंदे रही।

२४-किंवा मत।वाली थी।यौवन की।मदिरा पिये।

कौन कहे ?।

२५-निर्दय उस।नायक ने।

२६-निपट निठुराई की।

२७-कि।झोंकों की।झड़ियों से।

२८-सुंदर सुकु।मार देह।सारी झक।झोर डाली,

२६-मसल दिये।गोरे क।पोल गोल।

३०-चौंक पड़ी।युवती

३१-च।कित चितवन।निज चारों।ओर फेर,

३२-हेर।प्यारे को।सेज पास।

३३-नम्र मुखी।हंसी खिली।

३४-खेल रंग।प्यारे संग।[1]।

उक्त रचना के १,६,१०,११,१८,१६,२०,२१,२२,२३ चरणों में चार या आठ के वर्ण-गुच्छ मिलते हैं,तथा चौथे चरण में ६,७ के वर्ण-गुच्छ मिलते हैं,जिनके पश्चात् यति आती है।शेष चरणों में ३,५,६ या ७,मात्राओं के गुच्छ मिलते हैं जिनके अन्त में यति मिलती है।वस्तुत: इस प्रकार के यति विभाजन के आधार पर ही निरालाजी ने प्रवाह की मौलिकता का परिचय देते हुए छंद की एकरूपता का परिहार किया है।उक्त रचना में नवीन प्रवाह-योजना के साथ

---

१- निराला - परिमल - पृ १६१

काव्य के भाव-प्रवाह का सुमेल दृष्टव्य है।आशय यह कि इस प्रकार निरालाजी की मुक्त छंद की रचनाओं में छंद का प्रवाह भाव के प्रवाह के समानान्तर मिलता है।

३- निरालाजी द्वारा निर्मित मौलिक पारम्परिक छंद :: निरालाजी ने परम्पराप्राप्त छंदों में भी मौलिक प्रयोग करते हुए निम्नलिखित नवीन छंदों का निर्माण किया है।

१- यह छंद कुंडल छंद की लय के आधार पर निर्मित है,तथा त्रिकलात्मक है। इस छंद में दो त्रिकलों के स्थान पर ६ मात्राओं का भी प्रयोग होता है।इसके निर्माण का मात्रा क्रम इस प्रकार है-- ६+ ६+ ५+। प्राय: अन्त में रगण (SS) मिलता है।डाक्टर पुत्तुलाल शुक्ल ने इसे अणिमा नाम से अभिहित किया है।[1] इस छंद का उदाहरण निम्नलिखित है--

फैली दिङ्। मंडल में।चांदनी
बंधी ज्योति।जितनी थी।बांधनी,
करती है। स्तवन मंद। पवन से,[2]
गंध-कुसुम।कलिकाएं। भवन से। ।

गीतिका के ६४ गीत में तथा बेला के ४५ वें गीत में इसी छंद का प्रयोग निरालाजी ने किया है।

२- `मुतफ़ायलुन् मफ़ाइलुन् मफ़ाइलुन् फ़इल्` के वज़न पर निरालाजी ने २२ मात्राओं के नये छंद का प्रयोग किया है।हिन्दी नियम के अनुसार समलु--समचतुष्क के बाद त्रिकल ( लघु-गुरु आधार ) की ६ आवृत्तियों से यह छंद बनता है।इस छंद की ५,८,११,१४,१७,और २० वीं मात्रा लघु होती है।इस

---

१- शुक्ल,पुत्तुलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ २६६
२- निराला - अणिमा - पृ ४२

छंद का गणात्मक स्वरूप इस प्रकार है--SS|S|S|S|S|S|S|S ।डाक्टर पुत्तुलाल शुक्ल ने इस छंद को बेला छंद कहा है।उक्त छंद का उदाहरण निम्नलिखित है-

ये टहनी से हवा की छेड़छाड़ थी मगर,
खिलकर सुगंध से किसी का दिल बदल गया।
खामोश फतह पाने को रोका नहीं रुका,
मुश्किल मुकाम ज़िन्दगी का जब सहल गया।[1]

३- निरालाजी ने तीन अष्टकों के आधार पर जिस नवीन छंद की रचना राम की शक्ति पूजा में की है,उसे डाक्टर पुत्तुलाल शुक्ल ने शक्ति पूजा छंद नाम दिया है।इस छंद में विभिन्न अष्टकों का योग दृष्टव्य है।प्राय: SS|S| अष्टक का प्रयोग हुआ है।इस छंद के अन्त में S| आता है।अधिकांश रूप में इस छंद में SS|S| अथवा S|SS| की आवृत्ति मिलती है।राम की शक्ति पूजा के छंद प्राय: रोला[2] के अन्तर्गत आते हैं,केवल कुछ छंदों में ही इस नवीन छंद का रूप मिलता है।इसे निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है--

शत घूर्णावर्त,तरंग भंग,।उठते पहाड़।
जल-राशि-राशि।जल पर चढ़ता।खाता पछाड़,।
तोड़ता बंध।-प्रतिसंध धरा।,हो स्फीतवक्ष,।[3]
दिग्विजय अर्थ।प्रतिपल समर्थ।बढ़ता समक्ष। ।

उक्त छन्द के प्रत्येक चरण में मात्राक्रम इस प्रकार है- ८+८+८ ।

स्वच्छंद छंद या मुक्त छंद में ध्वनि-साम्य अथवा अन्त्यानुप्रास का विशेष महत्व है।इस छंद में किसी न किसी क्रम में ध्वनि-साम्य का प्रयोग करना ही पड़ता है।[4]मुक्त छंद के उपरोक्त उदाहरण में निरालाजी ने

---

१- निराला - बेला - गीत ७५
२- शुक्ल,पुत्तुलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ२६०
३- निराला - अनामिका - पृ १५३
४- शुक्ल,पुत्तुलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ २१७

स्फुटानुप्रास के रूप में ध्वनि-साम्य का परिचय दिया है, जिसके अन्तर्गत आदि या मध्य में वर्णों की आवृत्ति होती है--

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चांदनी की धुली हुई आधी रात,
आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात।[1]

उक्त उदाहरण के आदि में वर्णों की आवृत्ति मिलती है।

इनके अतिरिक्त निरालाजी द्वारा छंदों में किये गये कतिपय अन्य प्रयोग निम्नलिखित हैं--

छंद योजना में कारक की आवृत्ति :-

एक नव रूप में,
आया भर दूसरा ही,
स्पंदन तव हृदय में,
अन्वेषण नयनों में,
प्राणों में लालसा।[2]

डाक्टर पुत्तूलाल शुक्ल ने इसे कारक-यमक नाम से अभिहित किया है।[3]

छंद योजना में धर्म-व्यंजक शब्द की आवृत्ति :-

वैसाही सेवा भाव, वैसा ही आत्म-त्याग
वैसी ही सरलता, वैसी ही पवित्र कान्ति।[4]

इसे डाक्टर पुत्तूलाल शुक्ल ने वाचक-यमक नाम दिया है।[5]

---

१- निराला - परिमल - पृ १६२
२- वही - पृ २१३
३- शुक्ल, पुत्तूलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ ४१०
४- निराला - परिमल - पृ २४१
५- शुक्ल, पुत्तूलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ ४११

निराला-काव्य में छंदोविधान के संदर्भ में ही,उनके द्वारा काव्य में नियोजित संगीत का भी संक्षेप में अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

निरालाजी को क्रमशः ह्रासोन्मुख भारतीय संगीत के प्रति गहरा असंतोष था।अतः उन्होंने भारतीय संगीत की पुनः प्रतिष्ठा करने के हेतु खड़ीबोली हिन्दी में काव्य-रचना द्वारा संगीत-मग्न संगीतबद्ध छंद के प्रयोग किये हैं।[1] वस्तुतः संगीत के प्रमुख रूप से दो प्रकार मिलते हैं-- (१) लयात्मक,(२) स्वरात्मक । प्रथम प्रकार के अन्तर्गत राग आते हैं।ताल लयाश्रित होते हैं,और छंद भी लय पर आधारित होते हैं,[2] अतः इस दृष्टि से ताल और छंद का प्रत्यक्ष संबंध स्वीकार किया गया है।इस दृष्टि से निरालाजी द्वारा किये गये प्रयोग निम्नलिखित हैं-

धम्मार ताल की १४ मात्राओं को निरालाजी ने छंद में इस प्रकार निबद्ध किया है--

स्नेह ओतप्रोत,  
सिंधु दूर,शशिप्रभा-दृग[3]  
अश्रु ज्योत्स्ना-स्रोत।

उक्त छंद में पहले और तीसर चरण मेंर १४-१४ मात्राएं नहीं हैं,दूसरे चरण में १४ मात्राएं हैं।पहले और तीसरे चरण में मात्रा भरने वाले शब्द इसलिए कम है,क्योंकि वहां स्वर का विस्तार अपेक्षित है,जिसे निरालाजी ने निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया है--

---

१- निराला - गीतिका - भूमिका - पृ १२

२- (तु०) शुक्ल,पुत्तूलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ ४६०

३- निराला - गीतिका - पृ ५२

निराला-काव्य में छंदोविधान के संदर्भ में ही,उनके द्वारा काव्य में नियोजित संगीत का भी संक्षेप में अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

निरालाजी को क्रमशः ह्रासोन्मुख भारतीय संगीत के प्रति गहरा असंतोष था।अतः उन्होंने भारतीय संगीत की पुनः प्रतिष्ठा करने के हेतु खड़ीबोली हिन्दी में काव्य-रचना द्वारा संगीत-मय संगीतबद्ध छंद के प्रयोग किये हैं।[1] वस्तुतः संगीत के प्रमुख रूप से दो प्रकार मिलते हैं-- (१) लयात्मक,(२) स्वरात्मक । प्रथम प्रकार के अन्तर्गत राग आते हैं।ताल लयाश्रित होते हैं,और छंद भी लय पर आधारित होते हैं,अतः इस दृष्टि से ताल और छंद का प्रत्यक्ष संबंध स्वीकार किया गया है।[2] इस दृष्टि से निरालाजी द्वारा किये गये प्रयोग निम्नलिखित हैं-

धम्मार ताल की १४ मात्राओं को निरालाजी ने छंद में इस प्रकार निबद्ध किया है--

स्नेह ओतप्रोत,<br>
सिंधु दूर,शशिप्रभा-दृग[3]<br>
अश्रु ज्योत्स्ना-स्रोत।

उक्त छंद में पहले और तीसरे चरण में १४-१४ मात्राएं नहीं हैं,दूसरे चरण में १४ मात्राएं हैं।पहले और तीसरे चरण में मात्रा भरने वाले शब्द इसलिए कम हैं,क्योंकि वहां स्वर का विस्तार अपेक्षित है,जिसे निरालाजी ने निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया है--

---

१- निराला - गीतिका - भूमिका - पृ १२

२- (तु०) शुक्ल,पुत्तूलाल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृ ४६०

३- निराला - गीतिका - पृ ५२

१ २ २ २ २ २ २ १-१४

| | | | | | |

स्नै + ह + औ + त + प्रौ + औ + औ + त -[1]

इस प्रकार उन्होंने ७ मात्राओं की रूपक ताल,१० मात्राओं की झपताल, १२ मात्राओं के चौताल,१६ मात्राओं के तीन ताल,तथा ६ मात्राओं के दादरा को भी काव्य में निबद्ध किया है।[2]

इनके अतिरिक्त निरालाजी ने जिन तालों में छंद-प्रयोग किये हैं वे निम्नलिखित हैं -

हुआ प्रात,।प्रियतम तुम।जावगे चले[3]
कैसी थी।रात बंधु।थे गले-ग।ले

२० मात्राओं के उक्त भृंग चुंकि छंद को अर्जुन ताल में इस प्रकार देखा जा सकता है-

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
धा ऽ धि न न क धे ऽ धि न न क धे ऽ धा ऽ धि न न क
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०

फैली दिङ्।मण्डल में।चांदनी
बंधी ज्योति।जितनी थी।बांधनी
करती है।स्तवन मंद।पवन से[4]
गंध कुसुम।कलिकाएं।भवन से

१८ मात्राओं के उक्त छंद का नियोजन निम्नलिखित तालों में दृष्टव्य है -[5]

---

१-निराला-गीतिका-भूमिका-पृष्ठ-१३ , २- वही-पृष्ठ-१३-१६

३-निराला-गीतिका-पृष्ठ-६६

४-निराला-अणिमा-पृष्ठ-४२

५-शुक्ल पुत्तुलाल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना-पृष्ठ-४६३-४६४

विष्णु ताल :-

\+ २ ३ ४ ५ ६
धा ऽ कि ट त क धु म कि ट त क धे ऽ धि न ता
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७

मयूर ताल :-

\+ २ ३ ४
धी धा धिन नक धे धे धिन नक कि टि त क ग दि ग न ता
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७

शिखर ताल :-

\+ २ ३
धा तूक धिन नक थुंगा धिन नक धुम किट तक धेत धा तिट
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३

४
कति गदि गन ता
१४ १५ १६ १७

इस प्रकार पद-शिल्प के अंतर्गत निरालाजी के छंद-प्रयोगों का अध्ययन करने के पश्चात् निराला-काव्य के वाक्य-शिल्प का अध्ययन किया जा रहा है।

---

३-२ वाक्य-शिल्प : :

३-२-१ पद-विधान:- इससे पूर्व बताया जा चुका है कि निरालाजी की रचनाओं में प्राप्त शब्दावली या शब्द-संग्रह का स्रोत और प्रयोग की दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है।स्रोत की दृष्टि से अध्ययन करने पर मुख्य रूप से निरालाजी के काव्य में तीन प्रकार की शब्दावली दिखायी देती है- १) संस्कृत-बहुला, २) अरबी-फारसी बहुला, ३) जनपदीय । इन तीनों में से संस्कृत-बहुला शब्दावली का निराला-काव्य में आधिक्य मिलता है,अतः प्रथम उसीका अध्ययन एवं विवेचन किया जा रहा है ।

१) संस्कृत-बहुला शब्दावली:- निरालाजी ने संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से किया है।उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग प्रायः आशय एवं विषय के गंभीर्य एवं औदात्य को दृष्टि में रखकर किया है।उदाहरणार्थ ये रचनाएं दृष्टव्य हैं - प्रेयसी,सरोज-स्मृति,राम की शक्ति पूजा,तुलसीदास,देवी सरस्वती,[1] [2] आदि।जिन रचनाओं में दार्शनिकता या वैचारिकता का योग अपेक्षाकृत अधिक है उनमें भी संस्कृत शब्दों की बहुलता है,यथा- सखा के प्रति,बादल राग(५),जागरण[3] [4] [5] आदि।इनके अतिरिक्त पौराणिक आख्यानों पर आधारित रचनाओं में भी संस्कृत के तत्सम् शब्द दृष्टव्य हैं,यथा- राम की शक्ति पूजा,पंचवटी-प्रसंग(२),(४),[6] [7]

१- निराला-अनामिका-पृ१३१७,१४८

२-निराला-नये पत्ते-

३-निराला-अनामिका-पृ१६६

४-निराला-परिमल-पृ१८४

५-वही-पृ२६०

६-निराला-अनामिका-पृ१४८

७-निराला-परिमल-पृ२४२३२५०

आदि।उक्त प्रकार की रचनाओं में आशय,विषय तथा भाषा की अनुकूलता का ध्यान रखते हुए निरालाजी ने प्राय: सामासिक-शैली का प्रयोग किया है।भाषा-प्रयोग की इस शैलीके कारण सामान्यत: निरालाजी की भाषा पर दुरूहता एवं क्लिष्टता का आरोप किया गया है।[1] इस आरोप के उत्तर में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि आशय एवं विषय के अनुकूल उक्त प्रकार की भाषा एवं शैली का प्रयोग कवि के लिये अनिवार्य बन जाता है।इसीलिये उच्चतर मूल्यों से युक्त काव्य में भाषा का स्वरूप अधिक सुगठित एवं परिपुष्ट दिखायी देता है।वस्तुत: निरालाजी ने आवश्यकतानुसार सरल और क्लिष्ट दोनों रूपों में भाषा का विन्यास किया है,यद्यपि सामासिकता उनके काव्य में विशेष रूप से मिलती है।[2] आशय यह कि निरालाजी की दुरूह या क्लिष्ट शब्दावली,उनकी मौलिकता,प्रामाणिकता तथा श्रेष्ठता का प्रमाण है।

निरालाजी का संस्कृत-बहुला भाषा-विन्यास तीन रूपों में मिलता है-

१- समासप्रधान,ओजपूर्ण भाषा-प्रयोग,जिसे प्राचीन आचार्यों ने गौडी रीति अथवा परुषा वृत्ति कहा है।इस दृष्टि से निरालाजी की निम्नलिखित पंक्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय है -

"राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म-प्रहर,
उद्धत-लंकापति-मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर,
अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव-
विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव,
रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल-बल,-
मूर्च्छित-सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष-गय-नल,-
वारित-सौमित्रि-भल्लपति-अगणित-मल्ल-रोध,

---

१- 'रसवन्ती' - आनन्द, विजयेन्द्र - निराला की काव्य-कला - पृ- ३१२

२-

गर्जित-प्रलयाब्धि-दुब्ध-हनुमन्त-केवल-प्रबोध,
उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतु:प्रहर,-
जानकी-भीरु-उर-आशाभर-रावण-सम्वर ।[1]

२- लघु समास युक्त भाषा-प्रयोग जिसमें सामान्यत: कोमला और परुषा वृत्तियों का सम्मिश्रण हुआ है। `तुलसीदास` में इस शैली के विविध उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

अ) मूलादुख,अब सुख-स्वरित जाल
फैला यह केवल-कल्प काल -
कामिनी-कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता ।[2]

आ) अब स्मर के शर-केशर से झर
रंगती रज-रज पृथ्वी,अम्बर,
छाया उससे प्रतिमानस-सर शोभाकर ।[3]

`गीतिका` में भी उक्त शैली की प्रचुरता मिलती है -

अ) देख तुम्हें जीवन की विद्युत्
बढ़ती शत-तरंग-कम्पित द्रुत,
चुम्बित-मधुर-ज्योति-नयन-च्युत
खुल जाता कमल सित घन वरण ।[4]

आ) गूंज उठा पिक-पावन-पंचम,
खग-कुल-कलरव मृदुल मनोरम,
सुख के भय कांपती प्रणय-क्लम
वन-श्री चारुतरा ।[5]

---

१- निराला-अनामिका-पृ-१४८-१४६

२- निराला-तुलसीदास-छन्द,६ , ३- वही-छन्द,२१

४-निराला-गीतिका-पृ-४७ , ५- वही- पृ-५१

३- प्रसाद तथा माधुर्य गुणों से युक्त असमस्त और सरल भाषा का प्रयोग। इस प्रकार की शब्दावली प्रमुख रूप से अर्चना, आराधना, गीतगुंज आदि निरालाजी की परवर्ती रचनाओं में मिलती है। इस शैली के उदाहरण निम्नलिखित हैं -

अ) बांधो न नाव इस ठांव, बंधु
पूछेगा सारा गांव, बंधु-------
वह हंसी बहुत कुछ कहती थी,
फिर भी अपने में रहती थी,
सबकी सुनती थी, सहती थी,
देती थी सबके दांव, बंधु ।[1]

आ) सुख के दिन भी याद तुम्हारी
की है, ली है राह उतारी।-----
मेरे मानस को उभारकर
अन्तर्धान हो गये सत्वर,
उठी अचानक मैं जैसे स्वर,
कोकिल की काकली संवारी ।[2]

इ) बादल रे, जी तड़पे।------
छिप जाती है छवि बिजली में,
सरसर से दबती है ही मैं,
बूंदों की छन-छन से उन्मन,[3]
प्राणन मेरे हरसे।

---

१- निराला-अर्चना-पृष्ठ-५३

२-निराला-आराधना-गीत-११

३- निराला-गीतगुंज-पृष्ठ-३५

निरालाजी के पद-विधान की दृष्टि से यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि अन्य छायावादी कवियों के समान उनके काव्य को लक्षणाप्रधान नहीं कहा जा सकता। आधुनिक दृष्टि से उसे जिस प्रकार प्रतीकात्मक काव्य कहा जा सकता है, भारतीय काव्यशास्त्र की शब्दावली में उसे व्यंजनाप्रधान या ध्वनि-काव्य कहा जा सकता है। आशय यह कि निराला-काव्य में लाक्षणिकता का वह प्राधान्य नहीं है, जो पंतजी के काव्य में है। यद्यपि वैसे अनेक स्थानों पर लक्षणा के सुन्दर उदाहरण भी निराला-काव्य में मिलते हैं। 'तुम और मैं' कविता की पंक्तियां लाक्षणिक प्रयोग के उदाहरण के रूप में देखी जा सकती हैं -

तुम रण-ताण्डव-उन्माद नृत्य
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि ।[1]

वस्तुत: निरालाजी के काव्य में अभिधा और लक्षणा के जो प्रयोग मिलते हैं, उनमें अधिकांश प्रयोग व्यंजनापरक ही हैं।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसी विशेषताओं का भी निरालाजी ने परिचय दिया है, जिनके लिये उनकी मौलिक प्रतिभा और। अथवा उन पर संस्कृत, बंगला, अंग्रेज़ी आदि के प्रभाव को कारण माना जा सकता है । प्राय: आशय एवं विषय की समुचित अभिव्यक्ति के हेतु, उपयुक्त शब्द-नियोजन की प्रक्रिया के समय, कवि को नवीन शब्दों का निर्माण करना पड़ता है।[2] इस दृष्टि से निरालाजी ने भी अनेक रचनाओं में नवीन शब्दों का प्रयोग किया है। कतिपय निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

जागी पृथ्वि-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत[3]

---

१- निराला-परिमल-पृष्ठ-८६

२- Eliot T. S. - Introduction - 'The Art of Poetry' - P. xviii

३- निराला-अनामिका-पृष्ठ-१५१

शत-सहस्र-जीवन-पुलकित, प्लुत प्यालाकर्षण [1]
लै घट श्लथ लाती, पथ पिच्छल, तू गहरी
रचना-रहित वचन-चयनों में चकित सकल श्रुतिधर [2]
खुली रूप-कलियों में पर भर स्तर-स्तर सुपरिसरा
तमस्तूर्य दिग्मंडल
आतप ज्यों तम पर करोदंड
संलग्न वृन्त पर चिन्त्य प्राण [3]
ज्योतिश्छाय केश-मुख वाली
अल्पमूल्य की वृद्धिकरी हो
शत समुत्सुक उत्स बरसे
खुला धरा का पराकृष्ट तन
नभ-नभ कानन-कानन छा दे, ऐसे तुम निष्क्रान्त करो हे
व्योम-मुखच्छविसारा
रच गये जो अधर अनरुण [4]
कुम्हलाई डाली हरियाई
जीवन के सावन तुम झुलसो
नारि-नयन-ज्योति क्षीण क्षिति पर जैसे जहाज
जय अजेय, अप्रमेय
गरल-कण्ठ हे अकुण्ठ [5]
शतविध नामानुबन्ध

---

१- निराला-परिमल-पृष्ठ-६३

२- निराला-गीतिका-पृष्ठ-२१,४४,५१

३- निराला-तुलसीदास-छन्द,११४

४- निराला-अर्चना-पृष्ठ-३३,४०,४३,४८,६४,७७,७९

५- निराला-आराधना-गीत,२५,२६,३१,६७

श्याम अनिल,छवि श्याम संवाजे[1]
बरसो सुख,बरसो आनन्दन्
पुण्य के शुभ प्रस्रवण ये
समकी कमरखियां
मृदंग वादन,गति अविकृत्रिम[1] आदि ।

निरालाजी के काव्य में `तुम` शब्द का प्रयोग दो रूपों में मिलता है-[2] १-सम्मान सूचक अर्थ में, २-समवयस्कता अथवा समानता के अर्थ में।प्रथम अर्थ के अंतर्गत `तुम` के प्रयोग के साथ उन्होंने क्रियापद को अनुनासिक बना दिया है,यथा-

एक बार भी यदि अजान के
अन्तर से उठ आ जातीं तुम,
एक बार भी प्राणों की तम-
छाया में आ कह जातीं तुम---[3]

दूसरे अर्थ के अंतर्गत क्रिया को अनुनासिक नहीं बनाया है,यथा -

भर देती शत गान,तान तुम[4]

अल्पतम शब्दों में गहनतम भावों को व्यक्त करने की क्षमता निराला जी में अद्वितीय है।[5] परिणामस्वरूप सामासिकता के साथ-साथ परसर्गों के प्रयोग में संकोच तथा यत्र-तत्र कर्ता,कर्म,क्रियापद आदि का लोप निरालाजी ने किया है।

---

१-निराला-गीतगुंज-पृष्ठ-२५,२६,३४,३६,३७,४६,५१
२-तुल: बाजपेयी नंददुलारे-गीतिका-समीक्षा-पृष्ठ-२८
३-निराला-परिमल-पृष्ठ-६४
४-निराला-गीतिका-पृष्ठ७६
५-तुल:वर्मा धनंजय-निराला:काव्य और व्यक्तित्व-पृष्ठ-२११

इस दृष्टि से कतिपय निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं -

सामासिक्ता:-

अ- स्वर-सा कर दो अविनश्वर,
ईश्वर-मज्जित
शुचि चन्दन-वन्दन-सुन्दर , [1]
मन्दर-सज्जित

आ- गंध-व्याकुल-कूल-उर-सर,
लहर-कच कर कमल-मुख-पर,
हर्ष-अलि हर स्पर्श-शर,सर,
गूंज बारम्बार - ( रे,कह ) [2]

परसर्गों के प्रयोग में संकोच:-

तुम जो सुथरे पथ उतरे हो [3]

उक्त पंक्ति में `पर` परसर्ग का प्रयोग नहीं किया गया है।इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं।[4]

कर्ता का लोप:-

तिरतिर फिर-फिर प्रबल तरंगों में घिरती है
डोले पग जल पर डगमग डगमग फिरती है [5]

उक्त पंक्तियों में`घिरती है`,`फिरती है`,क्रियाओं के कर्ता का प्रयोग नहीं

---

१-निराला-परिमल-पृष्ठ-३४

२-निराला-गीतिका-पृष्ठ-१४

३-निराला-अर्चना-पृष्ठ-३३

४-निराला-गीतिका-पृष्ठ-१४ , तुलसीदास-छंद-१३

५-निराला-परिमल-पृष्ठ-३०

किया गया है, वह, `डोलती नाव` (प्रथम पंक्ति) के कर्ता `नाव` के अध्याहार पर छोड़ दिया गया है।

कर्म का लोप:-

अंचल सा न करो चंचल, दाण-भंगुर[१]

उक्त पंक्ति में कर्म `मुझको` अथवा `हमको सबको` आदि का लोप मिलता है। परंतु वस्तुत: यह इस कविता का दोष नहीं है, वरन् इसके कारण प्रतीकात्मकता, और उसके परिणामस्वरूप अर्थ की व्याप्ति, कविता में संभव हो सकी है।

क्रिया का लोप:-

नीली उस यमुना के तट पर
राजापुर का नागरिक मुखर
क्रीड़ित वय-विद्याध्ययनान्तर है संस्थित,
प्रियजन को जीवन चारु, चपल
जल की शोभा का-सा उत्पल
सौरभोत्कलित अम्बर-तल स्थल-स्थल, दिक्-दिक्।[२]

उक्त छंद में एक ही पूरक क्रिया का प्रयोग मिलता है। अंतिम पाद में क्रियापद की अपेक्षा रहती है। परंतु निरालाजी ने एक ही पूरक क्रिया पर समूचे छंद की रचना आधारित कर दी है।

<u>२- अरबी-फारसी बहुला शब्दावली</u>:- इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग निराला-काव्य में प्राय: मिलता है। विशेष रूप से उनकी परवर्ती रचनाओं में इन शब्दों का बाहुल्य दृष्टव्य है। उदाहरणार्थ `बेला` में छंद-प्रयोग या छंद-नावीन्य का परि-

१- निराला-परिमल-पृष्ठ-३४

२- निराला-तुलसीदास-छंद-१३

-चय देते हुए उर्दू की गफलों एवं बहरों में निरालाजी ने अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है।यथा -

अ- जो हस्ती से हुए हैं पस्त,समझे हैं वही क्या है,[१]
गुज़रती ज़िन्दगी के साथ,हरकत से भरी बातें ।

आ- निगह तुम्हारी थी,दिल जिससे बेक़रार हुआ,[२]
मगर मैं ग़ैर से मिलकर,निगह के पार हुआ ।

निरालाजी की व्यंगात्मक रचनाओं में भी इन शब्दों का प्रयोग दिखाई पड़ता है-

अ- माली ने कहा,`हुज़ूर`,
कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा,मंज़ूर
अर्ज़ हो,रहे हैं सिर्फ गुलाब।
गुस्से से कांपने लगे नव्वाब। ----
माली ने कहा,`मुआफ़ करें ख़ता,[३]
कुकुरमुत्ता उगाया नहीं उगता ।

आ- चूंकि यहां दाना है
इसीलिए दीन है,दीवाना है।
लोग हैं,महफिल है,
नग्मे हैं,साज़ है,दिलदार है और दिल है,
शम्मा है,परवाना है
चूंकि यहां दाना है ।[४]

---

१-निराला-बेला-पृष्ठ-६६

२-वही-पृष्ठ-३७

३-निराला-कुकुरमुत्ता-(प्रथम संस्करण) पृ

४- निराला-अणिमा-पृष्ठ-

३- जनपदीय शव्दावली:- सामान्य जन-जीवन में प्रचलित शब्दों का प्रयोग निरालाजी की परवर्ती रचनाओं में विशेष रूप से मिलता है।लोक गीतों पर आधारित रचनाओं में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है --

काले काले बादल छाये,न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे- कैसे नाग मंडलाये,न आये वीर जवाहरलाल।
महगाई की बाढ़ बढ़ आई,गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई।[१]
भूखे-नंगे खड़े शरमाये,न आये वीर जवाहरलाल।

इसी प्रकार उनकी व्यंगपूर्ण रचनाओं में भी सरल जनपदीय शव्द मिलते हैं--

अ- गांव के अधिक जन कुली या किसान हैं,
कुछ पुराने परजे जैसे घोबी,तेली,बढ़ई,
नाई,लोहार,बारी,तरकिहार,चुड़िहार,
बेहना,कुम्हार,डोम,कुररी,पासी,चमार....[२]

आ-कट रहा ज़माना कहां पटा ?
छट रहा पैर जो कहां सटा ?
पूरा कब है जब लगा बटा,
रुपया न रहा तो आने क्या ?[३]

इनके अतिरिक्त उनके ग्राम्यगीतों में भी उक्त प्रकार की शव्दावली मिलती है।[४]

निराला-काव्य में स्थान स्थान पर अंग्रेजी शव्दों का प्रयोग भी मिलता है। विशेष रूप से परवर्ती काल की व्यंगपूर्ण रचनाओं में अंग्रेजी शव्द दृष्टव्य हैं --

---

१- निराला - बेला - पृ ५४
२- निराला - नयेपत्ते - पृ १०७
३- निराला - आराधना - गीत ३०
४- निराला - नयेपत्ते - पृ १७,६३,१०६ आदि

अ- जैसे सिकुड़न और साड़ी,
ज्यों सफाई और मांड़ी,
कास्मोपालिटिन व मेट्रोपालिटिन....
सरसता में फ्राड
कैपिटल में जैसे लेनिनग्राड[1]

आ- गांधीवादी आये,
कांग्रेसमैन टेढ़े के,
देर तक, गांधीवाद क्या है, समझाते रहे।[2]

इ- कुल्हीपुर गांव में व्याख्यान देने को
आये हैं मोटर पर
लन्दन के ग्रेजुएट,
एम० ए० और बैरिस्टर[3]

इस प्रकार वाक्य शिल्प के अंतर्गत निरालाजी के परम्पराप्राप्त तथा मौलिक पद-विधान का अध्ययन एवं विवेचन करने के पश्चात, निरालाजी के बिम्ब-विधान का अध्ययन तथा उसकी व्याख्या आगे की जा सकती है।

३-२-२ बिम्ब-विधान :: सैद्धान्तिक रूप से बिम्ब-विधान की चर्चा पहले की जा चुकी है। परन्तु यहां यह उल्लेखनीय है कि निरालाजी के काव्य क में बिम्ब-विधान जहां एक ओर प्राचीन तथा समकालीन हिन्दी के कवियों के बिम्ब-विधान से भिन्न है, वहीं वह पाश्चात्य बिम्बवादी (Imagist) कवियों, तथा आधुनिक हिन्दी के प्रयोगवादी कवियों के बिम्ब-विधानों से भी भिन्न है।

---

१- निराला --कुकुरमुत्ता - पृ ८ ; २- निराला - नयेपत्ते - पृ ६३
३- निराला - नयेपत्ते - पृ १०६

रीतिकालीन हिन्दी काव्य का बिम्ब-विधान बहुत कुछ भारतीय अलंकार शास्त्र-मूलक कहा जा सक्ता है,अत: उसे बिम्ब-विधान न कहकर 'उपमान-विधान' व 'अप्रस्तुत योजना'- शब्दों द्वारा समझा जा सकता है,जब कि निराला-काव्य के उपमान विधानों व अप्रस्तुत योजना को पारम्परिक अर्थ में उपमान विधान व अप्रस्तुत योजना न कहकर बिम्ब-विधान कहना ही तर्क संगत है।कारण यह कि निरालाजी का बिम्ब-विधान 'अलंकार-पर्यवसायी' न होकर 'ध्वनिमूलक' (भारतीय ध्वनि सम्प्रदाय की ध्वनि) तथा 'प्रतीक-पर्यवसायी' है,और इसीलिए निराला-काव्य के बिम्ब-विधान को पाश्चात्य बिम्बवादी कवियों तथा आधुनिक प्रयोगवादी कवियों के बिम्ब-विधान से भिन्न भी कहा जा सकता है।आशय यह कि यद्यपि प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र में अलंकार-ध्वनि को भी माना है,परन्तु रीतिकाल और निराला-पूर्ववर्ती आधुनिक काल के अधिकांश कवियों के काव्य में अलंकार-ध्वनि के उदाहरण अपेक्षाकृत कम ही मिलते हैं।देव,बिहारी जैसे समर्थ कवियों की उपमान व अप्रस्तुत योजना मुख्यत: ध्वनि परक नहीं है,इसीलिए रीतिकालीन कवियों का अलंकार विधान कहीं कहीं काव्यार्थ का उपकारक न होकर काव्यार्थ का बाधक सिद्ध होता है।

निरालाजी के 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्ति पूजा' आदि कुछ काव्य-प्रयोग ऐसे हैं जिनमें अलंकृत शैली को सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत किया गया है।परन्तु इन रचनाओं में आशय तथा उद्देश्य के औदात्य के कारण अलंकृत शैली से एक विशेष प्रकार की गरिमा उत्पन्न होती है।परिणामस्वरूप निरालाजी के इन काव्यों में भी अलंकृत शैली औचित्यपूर्ण कही जा सक्ती है।उक्त वैशिष्ट्य को निरालाजी की काव्य प्रतिभा की विशेष सिद्धि ही कहा जा सकता है,दोष नहीं।रीतिकालीन कवियों के अलंकार-प्रयोग में यह गरिमा दृष्टिगत नहीं होती।साथ ही यह भी कहा जा सक्ता है कि निरालाजी के बिम्ब-विधान के समान रीतिकालीन कवियों का उपमान व अप्रस्तुत विधान अत्यधिक मौलिक व वैविध्यपूर्ण नहीं है।अतएव निरालाजी

के उपमान विधान व अप्रस्तुत विधान की चर्चा के लिए बिम्ब-विधान शब्द का प्रयोग करना अनुचित न होगा।

पाश्चात्य बिम्बवादियों का बिम्ब-विधान अपने आप में एक काव्य का उद्दीष्ट है।अर्थात् नवीन काव्यात्मक बिम्बसृजन इनके अनुसार काव्य की न केवल सिद्धि है,वरन् काव्यार्थ भी है।[1] बिम्ब विषयक उक्त धारणा आधुनिक हिन्दी के प्रयोगवादी काव्य के मूल में भी मानी जा सकती है।परन्तु बिम्ब विषयक उक्त धारणा के विपरीत प्रतीकवादियों ने बिम्ब-विधान को प्रतीक के उपकारक के रूप में ही स्वीकृत किया है।उनके अनुसार काव्यात्मक प्रतीकसृजन ही काव्य की सिद्धि है,और प्रतीकार्थ,काव्यार्थ है।जैसा कि पहले कहा जा चुका है,निरालाजी पाश्चात्य[2] प्रतीकवादी कवि बादलेयर,मेलार्मे,वालेरी,आदि के,किन्हीं दृष्टियों में समान है। बिम्ब-विधान की दष्टि से भी निरालाजी पश्चिम के उक्त प्रतीकवादी कवियों के अधिक निकट है।अतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन में बिम्ब शब्द का प्रयोग निरालाजी द्वारा अनुमोदित प्रतीकवादी व्याख्या के अनुकूल है।

उपरोक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में निरालाजी के बिम्ब-विधान की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टव्य हैं--

१- ध्वनिमूलक बिम्ब-विधान:- बताया जा चुका है कि निरालाजी के बिम्ब-विधान ध्वन्यात्मक है।अतः इस कोटि का बिम्ब-विधान निम्नलिखित उदाहरणों में मिलता है--

प्रियजन को जीवन चारु,चपल
जल की शोभा का-सा उत्पल
सौरभोत्कलित अम्बर-तल,स्थल-स्थल,दिक्-दिक्।[3]

---

१-

२-

३- निराला - तुलसीदास - छंद १३

उक्त पंक्तियों में प्रतिवस्तुपमा तथा पर्यायोक्ति अलंकारों की ध्वनि मिलती है।

प्रेयसी, प्राण संगिनी, नाम
शुभ रत्नावली-सरोज-दाम
वामा इस पथ पर हुई वाम सरितोपम।[1]

उक्त पंक्तियों में हेतूत्प्रेक्षा अलंकार की ध्वनि मिलती है।

२- प्रतीक पर्यवसायी बिम्ब-विधान:- वे बिम्ब, जिनका काव्य में अंततः प्रतीक के रूप में पर्यवसान होता है, इस कोटि के अंतर्गत आते हैं। उदाहरणार्थ 'परिमल' के 'बादल राग' शीर्षक पांचों कविताओं में प्रयुक्त बिम्ब बादल, रचना के अंत में, प्रतीक में पर्यवसित होता हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार 'तुलसीदास' में सूर्य का बिम्ब समस्त रचना में धीरे धीरे सघन एवं सार्थक होता हुआ, रचना के अंत में भारतीय संस्कृति के अस्त एवं उदय, भारतीय जनजीवन की निराशा और आशा, अज्ञान और ज्ञान, पतन और प्रगति, तमसे औ सत्व, तुलसीदास की अचेत और सचेत चेतना- इत्यादि प्रतीकों के रूप में पर्यवसित होता हुआ दिखाई देता है।

३- स्फुट बिम्ब-विधान:- वे बिम्ब-विधान जिनमें अमूर्त को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने का ऋजु प्रयास किया गया हो, इस ~~कोटि~~- कोटि के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार के बिम्ब-विधान में जहां एक ओर प्रस्तुत संबंधी विचारों व भावों से संबंधित भास्वरता का सहज बोध होता है, वहां साथ ही बिम्ब-विधान द्वारा अरूप को रूप भी मिलता है। निरालाजी ने अनेक स्थानों पर ज्योति, प्रकाश, अनल, आतप, वह्नि, किरण, ज्योत्स्ना आदि शब्दों का प्रयोग स्फुट बिम्ब-विधान के अंतर्गत प्रचुरता से किया है।[2] इस दृष्टि से कतिपय निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं--

---

१- निराला - तुलसीदास - छंद ३७

२- 'रसवंती'- २२ जुलाई, १९६२ (तुलनीय)- चतुर्वेदी मालारविन्दम् - पृ २५३

अ- रवि हुआ अस्त ज्योति के पत्र में लिखा अमर[1]
रह गया राम रावण का अपराजेय समर।

आ- कलुष-भेद-तम हर[2] प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे।

यहां प्रकाश शब्द ज्ञान, नवजीवन, जागृति, चेतना इत्यादि की व्यंजना करता है।

इ- मेरे स्वर की अनल-शिखा से
जला सकल जग जीर्ण दिशा से।[3]

उक्त पंक्तियों में अनल-शिखा द्वारा निरालाजी की प्रतिभा व्यंजित होती है।[4]

इसी प्रकार निरालाजी ने अज्ञान, दारिद्र्य, जड़ता, निराशा, अकर्मण्यता आदि के लिए अंधकार के बिम्ब का प्रयोग किया है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं--

अ- जागो, जागो, आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,[5]

आ- तम के आमार्ज्य रे तार-तार
जो, उन पर पड़ी प्रकाश-धार[6]

इ- कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।[7]

---

१- निराला - अनामिका - पृ १४८

२- निराला - गीतिका - पृ ३ ; ३- वही - पृ १३

४- (तु०) रसवंती - २२ जुलाई, १९६२ - चतुर्वेदी, मालाविन्दम्-पृ २५३

५- निराला - तुलसीदास - छंद ६३

६- वही- छंद ६७ ; ७- निराला - गीतिका - पृ ३

४- संकुल बिंबविधान:- इस कोटि के बिंबविधान में भावों एवं विचारों की सघनता मिलती है।इस कोटि के बिंबविधान में रूप-अरूप के परस्पर रूपान्तरण (*Metamorphosis*) के साथ अर्थ की असंख्य संभावनाओं के स्तर मिलते हैं,अत: इसे विकसनशील प्रतीक पर्यवसायी बिंबविधान भी कहा जा सकता है।निरालाजी की प्रारंभिक रचनाओं में इस प्रकार के बिंबविधान का बाहुल्य मिलता है,जब कि परवर्ती रचनाओं में स्फुट-बिंबविधान का आधिक्य होने पर भी संकुल बिंबविधान के उदाहरण यत्र-तत्र मिल जाते हैं।निम्नलिखित उदाहरणों में संकुल बिंबविधान दृष्टव्य है--

अ- स्वप्न ही तो राग वह कहलायेगा ?
फिर मिटेगा स्वप्न भी निर्धन
गगन-तम-सा प्रभा-पल में,
तुम्हारे प्रेम अंचल में ।[१]

इन पंक्तियों में बिंबविधान के कई स्तर उल्लेखनीय हैं।यहां राग को पहले स्वप्न कहा है,जिसे फिर निर्धन कहा है,और उसकी समाप्ति का रूप उद्घाटित करते हुए जो बिंबविधान किया है,वह अपनी मौलिकता तथा स्वाभाविकता के कारण उल्लेखनीय है।कवि ने स्वप्न के क्रमश: क्षीयमाण अंत को'प्रभा-पल में,गगन-तम' के बिंब द्वारा व्यक्त किया है,परंतु अंत में'तुम्हारे प्रेम-अंचल में' जोड़कर बिंब का स्वातंत्र्य समाप्त कर उसे प्रतीक पर्यवसायी बना दिया है।

आ- मृदु सुगंध-सी कोमल दल फूलों की,
शशि-किरणों की-सी वह प्यारी मुस्कान,
स्वच्छंद गगन-सी मुक्त,वायु-सी चंचल,
खोई स्मृति की फिर आई-सी पहचान ।[२]

---

१- निराला-परिमल-पृष्ठ-३३

२- वही-पृष्ठ-१२२

यहां कवि ने विविध बिंबों के स्तर चढ़ाकर मूर्त मुस्कान कोक्काव्यात्मक रूप प्रदान किया है। प्रथम, मृदु सुगंध के अमूर्त बिंब द्वारा मुस्कान की मृदुता तथा आह्लादकता को व्यक्त किया है, औरआगे, 'कोमल दल फूलों की' द्वारा उस सुगंध को एक ओर सीमित (quality) करने के साथ साथ कोमल फूलों की मुस्कान के बिंब द्वारा प्रथम अमूर्त बिंब को पुन: मूर्त सौंदर्य प्रदान किया है, अन्यथा केवल फूलों की सुगंध का बिंब देने के लिये प्रथम पंक्ति इस प्रकार रखी जा सकती थी - 'कोमल दल फूलों की मृदु सुगंध सी' - परंतु उपरोक्त बिंब-सौंदर्य प्रस्तुत करने में यह पद-रचना उपयुक्त एवं सक्षम न होती यह दृष्टव्य है। मुस्कान की मृदुता एवं आह्लादकता के हेतु बिंबविधान को और अधिक अमूर्तता प्रदान करने के लिये कवि ने शशि किरणों के बिंब का प्रयोग किया है। अगली पंक्ति में मूर्त मुस्कान के मुक्त, निष्कलुष, स्वच्छंद रूप के साथ उसके रूप और प्रभाव की व्यापकता एवं गंभीरता के लिये गगन का मूर्त बिंब प्रस्तुत किया है और पुन: उसकी चंचलता के गुण को अमूर्त वायु के बिंब द्वारा स्पष्ट करते हुए पूर्वोल्लिखित स्वच्छंदता तथा मुक्तता को वैशिष्ट्य प्रदान किया है। अंत में, मूर्त-अमूर्त के युगपत् बिंबविधान की परिणति कवि ने, एकसाथ दो अमूर्त बिंबों द्वारा की है--

'खोई स्मृति की फिर आई सी पहचान'

इ- प्यार ही प्यार का चुंबन संसार था[१]

इस पंक्ति में कवि ने मूर्त और अमूर्त बिंब को परस्पर एक दूसरे में इस प्रकार मिला दिया है, कि दोनों के बीच विभाजन रेखा खींचना भी अशक्य सा हो गया है। एक ओर, चुंबन के द्वारा अभिव्यक्त अमूर्त प्यार को ही संसार कहकर

---

१-निराला-परिमल-पृष्ठ-२११

उसे मूर्त किया है,तो दूसरी ओर मूर्त संसार को चुंबन का अमूर्त प्यार भी कहा है।

ई- इन्द्र-धनुष के सप्तक तार -
व्योम और जाती का राग उदार[1]

यहां कवि ने प्रथम इन्द्र धनुष को तंतुवाद्य के तारों के मूर्त बिंब द्वारा स्पष्ट किया है,और इस मूर्त बिंब पर पुनः पृथ्वी और आकाश के संगीत या राग के अमूर्त बिंब का स्तर चढ़ाया है।इस प्रकार यहां कवि ने रंग-बिंब और ध्वनि-बिंब का विलयन प्रस्तुत किया है।

उ- फूल सी देह द्युति सारी,हलकी तुल-सी संवारी[2]

यहां प्रथम नायिका के देह के लिये पुष्प का मूर्त बिंब प्रस्तुत किया है,और आगे पुनः अमूर्त बिंब'द्युति' द्वारा देह के सौंदर्य को द्विगुणित किया है।अथवा आगे सारी अर्थात् साड़ी के लिये द्युति के अमूर्त बिंब को रखा है,और फिर पुनः पूरे शरीर को तूलिका के मूर्त बिंब द्वारा स्पष्ट किया है।

इनके अतिरिक्त निरालाजी ने शब्द,[3] रूप,[4] गंध,[5] रस,[6] के बिम्ब-विधान भी प्रस्तुत किये हैं।क्रिया का अमूर्त बिम्ब-विधान भी दृष्टव्य है--

---

१- निराला - परिमल -पृ २११

२- वही - पृ १८३

३- निराला - तुलसीदास - छंद ८७

४- वही - छंद ८९

५- वही - छंद ९१

६- वही - छंद ९२

पलकों के नीड़ से सोने के नभ में
उड़ जाते थे नयन, वे चूम कर असीम को
लौटते आनन्द भर।[1]

यहां नयनों की अमूर्त क्रिया का बिम्ब-विधान किया गया है।

गति भी वह कितनी धीर-
शिशिर का जैसे निःशब्द अभिसार हो
शिविर में विश्व के।[2]

यहां अमूर्त गति का बिम्ब-विधान किया गया है।

प्राचीन बिम्बों व प्रतीकों का प्रयोग भी निरालाजी ने सदा, सर्वत्र, साधिकार किया है, परन्तु ऐसा करते हुए उनकी मौलिकता अपना चमत्कार दिखाए बिना रही नहीं है। उदाहरणार्थ उपनिषदों की उक्ति जीवात्मा को जड़ प्रकृति- वृक्ष की शाखा पर बैठा हुआ भोगी पक्षी कहा है--

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं
वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नभिचाकशीति।।

निरालाजी ने भी तुलसीदास को संसार के वृक्ष की शाखा का वह वन-विहग कहा है जो चित्रकूट-दर्शन के प्रभाव से उन्मन हो जाता है, और अपनी शाखा को छोड़ जब वह निस्तरंग नभ में मुक्त होकर उड़ता है तब कवि ने कहा है--

---

१- निराला - परिमल - पृ २१२
२- वही - पृ २१३
३-

वह उस शाखा का वन-विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग-रंग पर जीवन।[1]

'गीतिका' की निम्नलिखित पंक्तियां भी उक्त उदाहरण के संदर्भ में तुलनीय हैं--

निशि-तम-डाल-मौन मेरा खग
उड़ जाता अनंत नभ के मग,
रंग देता प्रसुप्त जग के रंग,
गीत जागरण मंजुल अमरण।[2]

वस्तुतः उपरोक्त दोनों उदाहरणों की काव्य पंक्तियों को विविध अर्थों में स्पष्ट किया जा सकता है,परन्तु यहां उल्लेखनीय तथ्य यह है कि निरालाजी ने परंपरागत बिम्ब को नवीन अर्थ-संपदा प्रदान की है।

इस प्रकार निरालाजी के बिम्ब-विधान का अध्ययन के करने के पश्चात् वाक्य-शिल्प के अंतर्गत उनके प्रतीक विधान का अध्ययन एवं विवेचन किया जा सकता है।

३-२-३ प्रतीक विधान :: प्रतीक के स्वरूप के विषय में पहले जो विचार किया गया है,वह मुख्यतः पाश्चात्य (विशेषतः फ्रेन्च) विचारकों की धारणाओं पर आधारित है,तथा उक्त धारणा के अनुरूप ही निराला-काव्य में विविध तथा पुष्ट प्रतीक योजनाओं के प्रयोग प्राप्त होते है,जो वस्तुतः परंपरा-प्राप्त भारतीय अलंकार शास्त्र के किसी अलंकार के रूप में नहीं समझे जा सकते।आशय यह कि पाश्चात्य प्रतीकवादी कवियों के प्रतीकों के समान ही निराला-काव्य में

---

१- निराला - तुलसीदास - छंद २२
२- निराला - गीतिका - पृ ३७

बहुविद प्रतीक मिलते हैं। निरालाजी के प्रतीक विधान के अंतर्गत इन विशेषताओं का सामान्य रूप से उल्लेख किया जा सकता है-- संगीतात्मकता, पौराणिक कथा-नियोजन, स्वायत्त प्रयोग, अर्थ-संकुलता इत्यादि।

उपरोक्त विवेचन को दृष्टि में रखते हुए निरालाजी के प्रतीक विधान को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है--

१- लघु प्रतीक:- इन प्रतीकों को वाक्यमूलक कहा जा सकता है, क्योंकि इनकी व्याप्ति वाक्य तक ही सीमित होती है। अर्थात् वाक्य रचना ऐसी हो जो विभिन्न व्यंजनाएं कर सकती हो। बिम्ब-विधान से इस प्रकार के प्रतीक विधान का अन्तर इस रूप में मिलता कि बिम्ब प्रतीक की तरह स्वतन्त्र नहीं होता, और न उसकी व्याप्ति का प्रभाव ही प्रतीक जितना व्यापक होता है।

२- मध्यम प्रतीक:- इन प्रतीकों को पद्यमूलक कहा जा सकता है क्योंकि इनकी व्याप्ति संपूर्ण- पद्य में समाहित रहती है। रूपक और इस प्रकार के प्रतीक में भेद यह है कि किसी पद्य में रूपक का प्रयोग अ - ब इस रूप में किया जाता है, जब कि पद्यमूलक प्रतीक इस प्रकार अवलम्बित न रह कर स्वतन्त्र, स्वायत्त एवं स्वयंपूर्ण होता है।

३- विराट प्रतीक:- इन प्रतीकों को प्रबंधमूलक कहा जा सकता है, क्योंकि इनकी व्याप्ति समस्त प्रबन्ध में विस्तृत या सन्निविष्ट रहती है। इनमें और रूपक में अंतर यह होता है कि रूपक की अर्थ सम्पदा सीमित होती है जब कि विराट प्रतीक द्वारा अर्थ और भाव की संभावनाओं के द्वार उद्घाटित हो जाते हैं।

प्रतीक विधान के उपरोक्त वर्गों के उदाहरण निम्नलिखित रूप में देखे जा सकते हैं--

१- लघु प्रतीक:-

हे उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।[१]

---

१- निराला - तुलसीदास - छंद १

इस पंक्ति में कमल शब्द ही प्रतीक की क्षमता से युक्त है, जिसके द्वारा विविध अर्थों की व्याख्या संभव है। यहां कमल केवल भारतीय संस्कृति का ही प्रतीक नहीं है, अपितु वह देश, काल, संस्कृति आदि अर्थों की संभावनाओं से युक्त है, और यह वैविध्य युगपत् अभिव्यंजना द्वारा आया है। अतः उसे बिम्ब न कह कर प्रतीक ही कहेंगे, क्योंकि बिम्ब सीमित अर्थ देता जब कि इस प्रतीक के प्रयोग के कारण पूरा वाक्य ही अभिव्यंजना शक्ति से सम्पन्न हो गया है।

२- मध्यम प्रतीकः- अनामिका की ठूंठ[१] कविता में कवि ने सम्पूर्ण रचना में व्याप्त एकाकीपन, औदासीन्य, शैथिल्य, वार्द्धक्य, ~~निर्वि-~~ विवशता, निरसता आदि भावों को ठूंठ के प्रतीक द्वारा अभिव्यंजित किया है। इसी प्रकार गीतिका के चौदहवें गीत में रूखी डाल के प्रतीक द्वारा- तपस्विनी[२], शिवाकांक्षी पार्वती के तप, तपोभूमि तथा पार्वती के भावों की अभिव्यंजना की है।

३- विराट प्रतीकः- राम की शक्ति पूजा निरालाजी की विराट प्रतीक योजना का उदाहरण है। इस रचना में वर्णित समर या संघर्ष, व्यापक एवं उदात्त भाव का प्रतीक है। यह समर केवल राम और रावण के बीच ही नहीं है, वस्तुतः राम और रावण का यह संघर्ष- सुर-असुर, सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, सतोगुण-तमोगुण, परमार्थ-स्वार्थ, ज्ञान-अज्ञान, विद्या-अविद्या आदि के बीच होने वाले संघर्ष का प्रतीक है।

इसी प्रकार 'तुलसीदास' काव्य, भारतीय संस्कृति के अस्त और उदय की कहानी है, भारतीय जीवन की निराशा और आशा का साक्षी है, भारतीय समाज की अवगति और प्रगति का लेखा है, भारत की अचेतन और सचेतन अवस्था का द्योतक है। यह सुसुप्त आत्मा की, जागृति में संक्रमित होने की कथा है। इस काव्य द्वारा- अंधकार की प्रकाश में, व्यष्टि की समष्टि में, निष्क्रियता की सक्रियता में, भोग की योग में, जड की चेतन में, आसक्ति की अनासक्ति में - परिणति व्यंजित की है। आशय यह कि यह संपूर्ण

---

१- निराला - अनामिका - पृ१३६

२- निराला - गीतिका - पृ १६

काव्य प्रतीकात्मक है। यह काव्य निरालाजी की सर्वाधिक, सुष्ठु, तथा सुसंवादी प्रतीक योजना का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

मिथ:- जब प्रतीक अत्यन्त पुष्ट हो जाता है या होने लगता है, तब वह मिथ-रूप हो जाता है। काव्य में वर्णित संकुल एवं पुष्ठ प्रतीक विधान से युक्त दाण भी मिथ बन जाता है। उदाहरणार्थ `तुलसीदास` में १७वें छंद से लेकर ४३वें छंद तक का प्रतीक विधान क्रमश: मिथ के रूप में विकसित हो जाता है। कवि ने उक्त छंदों में प्रकृति से प्रभावित तुलसीदास की, दाणार्द्ध में होने वाली उन्मन चेतना को प्रतीकात्मक शैली में बांधा है। इसी प्रकार अन्त में ८६ से ६७ छंद तक दाणार्द्ध में रत्नावली से प्रभावित तुलसीदास की उन्मन एवं जागृत चेतना की बौद्धिक तथा भावात्मक जटिलता से युक्त संकुल अवस्था को व्यंजित किया है। राम की शक्ति पूजा में हनुमान जी के मन की दाणार्द्ध में ऊर्ध्व-अवस्था का भी निरालाजी ने इसी प्रकार व्यक्त किया है।[१]

निरालाजी ने पौराणिक आख्यायिकाओं का भी स्थान स्थान पर प्रयोग किया है, यथा- गीतिका के १४वें गीत में पार्वती के तप का उल्लेख,[२] `तुलसीदास` में अहिल्योद्धार की घटना का उल्लेख,[३] आदि।

---

१- निराला - अनामिका - पृ १५३ - १५५

२- निराला - गीतिका - पृ १६

३- निराला - तुलसीदास - छंद २०

## २-३ महावाक्य-शिल्प ::

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि अनेक वाक्यों की सांग इकाई को महावाक्य कहा जा सकता है, अर्थात् जब अनेक-विध-वाक्य सामूहिक रूप से एक सांग एवं सान्वित इकाई को रूप देते हैं, तब एक महावाक्य निष्पन्न होता है। इस प्रकार महावाक्य को कविता की एक स्वरूपात्मक इकाई के रूप में समझा जा सकता है, अर्थात् प्रत्येक कविता अपने आपमें एक इकाई है जो विविध वाक्यों के समुच्चय से निष्पन्न होती है।

महावाक्य की उक्त परिभाषा के अनुसार निरालाजी की प्रत्येक कविता को एक महावाक्य कहा जा सकता है, तथा निरालाजी की प्रथम रचना `जुही की कली` से लेकर उनकी अंतिम रचना तक उनके समस्त काव्य में अनेकानेक महावाक्य हैं, जो प्रबंध और संरचना की दृष्टि से विविध प्रकार के हैं। वस्तुतः निरालाजी के, मूलतः मुक्तिवादी होने के कारण उनके महावाक्यों (अर्थात् कविता) में स्वरूपात्मक वैविध्य इतना अधिक है कि उन्हें किन्हीं सामान्य स्वरूपात्मक मानों के आधार पर सुनिश्चित वर्गों में विभक्त नहीं किया जा सकता। आशय यह कि उनके लघुतम- महावाक्य और बृहत्तम-महावाक्य के बीच में अनेकानेक स्वरूपात्मक श्रेणियां प्राप्त होती हैं। अर्थात् `जग को ज्योतिर्मय कर दो`[१] जैसे लघुतम महावाक्यों और `तुलसीदास`[३] जैसे बृहत्तम महावाक्य के बीच में - सेवा[२], पास ही रे हीरे की खान, प्रेयसी, दान, मित्र के प्रति, बनबेला[४], देवी सरस्वती[५], सरोज स्मृति,

१- निराला - परिमल - पृ-२२

२- वही - पृ-२०

३- निराला - गीतिका - पृ-२७

४- निराला - अनामिका - पृ-१,२२,१०,८३

५- निराला - नयेपत्ते - पृ-६५

राम की शक्ति[१], पूजा आदि विविध महावाक्य दृष्टिगत होते हैं। अतः निराला-काव्य के समस्त महावाक्यों को किन्हीं सुनिश्चित स्वरूपात्मक श्रेणियों में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता।

निरालाजी के महाव्यक्तित्व के विवेचन के प्रसंग में उल्लेख किया जा चुका है कि उनकी श्रवणेन्द्रिय अत्यन्त प्रबुद्ध थी तथा साथ ही उनका कण्ठ अत्यन्त मधुर था। इसीलिए उनके कवि-व्यक्तित्व में गायक का व्यक्तित्व भी अंतर्भूत था। ऐसे सांगीतिक कवि का वैखरी वाणी (Articulated language) का कवि होना स्वाभाविक ही था। वस्तुतः निरालाजी अपने कवि-व्यक्तित्व के उक्त रूप के कारण ही कविता के छंदोविधान के क्षेत्र में क्रांति कर सके। मुक्त छंद के विवेचन के प्रसंग में उन्होंने[२] जिस 'आर्ट आफ म्युजिक' और 'आर्ट आफ रिडिंग' का उल्लेख किया है, उससे यही सिद्ध होता है कि निरालाजी को कविता मूलतः उसके उच्चरित रूप में ही स्वीकार्य है, अतः पाठ-प्रविधि या प्रक्रिया के आधार पर उनकी कविताओं का कोटिकरण (Catagorisation) किया जा सकता है--

महावाक्य
(कविता)

- पाठ्य महावाक्य
  - मुक्तक
  - प्रबंध
- गेय महावाक्य
  - शास्त्रीय
  - मुक्त

---

१- निराला - अनामिका - पृ-१४८

२- निराला - परिमल - पृ-२१

पाठ्य महावाक्य के अंतर्गत निरालाजी की उन समस्त रचनाओं को माना जा सकता है, जिनकी संरचना का सौन्दर्य पाठ-प्रक्रिया द्वारा ही पूर्णतः उभरता है। निरालाजी का वह समस्त काव्य इस कोटि के अंतर्गत होगा जिसे गेय-काव्य नहीं कहा जा सकता। गेय और पाठ्य महावाक्यों में मौलिक अंतर यह है कि गेय महावाक्यों के मूल में लय और तुक के साथ साथ स्वर और ताल भी होते हैं, जब कि पाठ्य महावाक्य के मूल में केवल लय और तुक ही होते हैं। इसका आशय यह नहीं कि पाठ्य रचनाओं का गान नहीं हो सकता, या गेय रचनाओं का पाठ नहीं हो सकता। परन्तु कवि की दृष्टि से और सिद्धान्तः भी जिन रचनाओं में 'आर्ट आफ म्युजिक' है उन्हें गेय महावाक्य, और जिन रचनाओं में 'आर्ट आफ रिडिंग' है उन्हें पाठ्य महावाक्य कहा जा सकता है। इस दृष्टि से बादल राग तथा गीतिका की रचनाएं गेय महावाक्य का उदाहरण है और जुही की कली तथा वह तोड़ती पत्थर आदि पाठ्य महावाक्य का उदाहरण है।

पाठ्य महावाक्यों को मुक्तक और प्रबंध के रूप में आगे वर्गीकृत किया जा सकता है। वस्तुतः मुक्तक औ प्रबंध शब्द भारतीय काव्यशास्त्र के पारिभाषिक शब्द होने के कारण जिस विशेष अर्थ का वहन करते हैं,[१] उसके अनुसार भी निराला जी की पाठ्य कविताओं को उक्त दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है। परन्तु विशुद्ध पारम्परिक अर्थ में जैसे सूर, तुलसी, बिहारी, देव आदि के मुक्तकों के समान निरालाजी के मुक्तक-पाठ्य-महावाक्यों को मुक्तक नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार निरालाजी के तुलसीदास, पंचवटी प्रसंग, राम की शक्ति पूजा आदि प्रबंध-पाठ्य-महावाक्यों को पारम्परिक प्रबंध काव्य के किसी भेद आदि के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता। आशय यह कि वह तोड़ती पत्थर, जुही की कली, पंचवटी प्रसंग आदि निरालाजी के मुक्तक-पाठ्य-महावाक्यों को पारम्परिक अर्थ

---

१- हिन्दी साहित्य कोष - पृ

में मुक्तक नहीं कहा जा सकता, और न ही निरालाजी के मुक्तक संग्रहों को संस्कृत काव्य शास्त्र के ग्रंथों में वर्णित मुक्तक के भेदों में से किसी एक के अंतर्गत परिगणित किया जा सकता है। इसी प्रकार भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार प्रबंध काव्य के किसी भेदोपभेद के रूप में निरालाजी के तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा, पंचवटी प्रसंग आदि को स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

निरालाजी के उक्त पाठ्य महावाक्यों के प्रकारों के समान ही उनके पूर्ववर्ती तथा समकालीन अनेक कवियों ने नवीन प्रयोग किये हैं, परन्तु इस दृष्टि से हिन्दी काव्य शास्त्र में विचार नहीं हुआ है। अतः इसके विषय में सम्प्रति विशेष विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबंध की सीमाओं में नहीं किया जा सकता। परन्तु निरालाजी के उक्त पाठ्य महावाक्यों के विषय में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी संरचना जितनी वैविध्यपूर्ण है, उतनी ही मौलिक और काव्यात्मक भी है।

पाठ्य महावाक्यों के अतिरिक्त निरालाजी द्वारा निर्मित गेय महावाक्यों के भी दो प्रकार मिलते हैं। प्रथम वे गेय महावाक्य है जिनकी रचना विशुद्ध भारतीय शास्त्रीय संगीत पर आधारित है। परिमल की प्रथम खण्ड की रचनाएं तथा गीतिका की रचनाएं इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं में निरालाजी ने खड़ी बोली के स्वरूप को दृष्टि में रखते हुए ~~अपनी रचनाओं में~~ संगीत के विशिष्ट प्रयोग किये हैं।[1] वर्तमान भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रचलित भातखण्डे-संगीत-पद्धति से संतुष्ट नहीं थे।[2] अतः उक्त पद्धति की त्रुटियों को दृष्टि में रखकर भी निराला जी ने अपने गीतों को संगीत के अभिनव शास्त्रीय रूप में निबद्ध किया है।[3] दूसरे प्रकार के गेय महावाक्यों को मुक्त गेय महावाक्य की कोटि में रखा जा सकता है। इनका संगीत अंग्रेजी ढंग का है। वैसे अंग्रेजी संगीत का प्रभाव बंगला साहित्य में

---

१- निराला - गीतिका - भूमिका - पृ १२,१८

२- श्री रामकृष्ण त्रिपाठी के साथ की गई चर्चा के अन्तर्गत प्राप्त सूचना

३- निराला - गीतिका - भूमिका - पृ १२

विशेष रूप से मिलता है।डी० एल० राय,तथा रवीन्द्रनाथ ने अंग्रेजी संगीत को अपनाया है।[१] बंगाल के दीर्घ वास्तव्य तथा बंगला साहित्य के गहन अध्ययन के फल स्वरूप निरालाजी ने भी अपने गेय महावाक्यों में अंग्रेजी संगीत का प्रभाव ग्रहण किया हो यह स्वाभाविक है।आशय यह कि निरालाजी के महाकाव्यों में गेयता के वैविध्यमूलक मौलिक प्रयोग मिलते हैं।

उपसंहार :: उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निराला-काव्य की मूलभूत इकाइयां अर्थात् महावाक्य अर्थात् कविता मूलत: छंद और संगीत के तत्वों पर आधारित है।परंतु उनकी समस्त रचनाओं के विहंगावलोकन के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनकी समस्त रचनाओं में पाठ्य महावाक्य अपेक्षाकृत संख्या में अधिक है।निरालाजी के कवि व्यक्तित्व के जैसे संगीतज्ञ और संगीतकार उपलक्षण हैं,वैसे ही उनके समस्त काव्य में गेय महावाक्य विशेषता के रूप में ही हैं,सामान्यता के रूप में नहीं।इससे सिद्ध होता है कि निराला-काव्य मूलत:काव्य ही है,संगीत नहीं।

निराला-काव्य की उक्त स्वरूपात्मक इकाइयों को यदि एक ईकाई मान लिया जाय तो कहा जा सकता है कि वह महावाक्य समुच्चय - महाकाव्य,पाठ प्रधान कहा जायेगा,न कि गान प्रधान।इस प्रकार निरालाजी ने अपने महाकाव्य के मूलत: काव्यत्व को सिद्ध किया है।उनके उक्त महाकाव्य की शैलीगत विशेषता जैसे पाठ-प्रधानता है,उसी प्रकार उसे उसकी पद,और वाक्य-शिल्प-गत विशेषताओं से मंडित कहा जा सकता है,जिनका ~~अवलोकन-तथा अनेक~~ विवेचन ~~करके~~ उपरोक्त अध्ययन द्वारा किया जा चुका है।

आशय यह कि निराला-महाकाव्य रूप-शिल्प-गत,विविध,मौलिक,और कलात्मक विशेषताओं का पुंज है।

---

१- तु० निराला - गीतिका - भूमिका - पृ १०-११